जनवरी–जून, 2021

अंक-05

वन अनुसंधान ई-पत्रिका

वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक
अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

उप–संरक्षक
एस.के. थॉमस
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक मंडल

मुख्य संपादक
डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी
रसायन विज्ञान एवं जैव पूर्वेक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक एवं समन्वयक
श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–ई
विस्तार प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सहायक संपादक
श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रचना एवं अभिन्यास
अमोल राऊत
तकनीकीय आर्टिस्ट
वर्गीकरण वनस्पति शाखा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रकाशन
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

(पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आँकड़ें और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

निदेशक की कलम से ....

अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हो रही है कि ''वन अनुसंधान ई–पत्रिका'' के अंक–05 का प्रकाशन किया जा रहा है। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के अन्तर्गत सभी संस्थानों में कार्यरत हमारें प्रबुद्ध वैज्ञानिकों, अधिकारियों और शोधार्थियों की मेहनत को आपके समक्ष रखना इस पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य है। पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख अत्यंत सुपाठ्य और अधिक मनोग्राही हैं। यह पत्रिका निःसंदेह वानिकी शोधों को जनमानस तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम है।

''वन अनुसंधान ई–पत्रिका'' के अंक–05 को सफल बनाने हेतु सभी लेखक धन्यवाद के पात्र हैं मैं उनसे आशा करता हूँ कि वे भविष्य में भी पत्रिका के आगामी अंकों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते रहेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि पत्रिका के आगामी अंकों का प्रकाशन इसी तरह जारी रहेगा तथा यह पत्रिका अधिकांश पाठकों को लाभान्वित करेगी। मैं पत्रिका के सम्पादक मंडल, इसमें प्रकाशित रचनाओं के रचनाकारों एवं प्रकाशन से संबद्ध कर्मियों के साथ–साथ सुधी पाठकों को भी हार्दिक बधाई देता हूँ।

अरुण सिंह रावत
निदेशक

कुलसचिव की कलम से ....

एस.के. थॉमस
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान ई–पत्रिका का प्रकाशन किया जाना अत्यंत हर्ष का विषय है। आज समय की मांग है कि वानिकी एवं कृषि वानिकी के क्षेत्र में तीव्र विस्तार है। इस पत्रिका में वानिकी एवं कृषि वानिकी में अनुसंधान आधारित लेखों को स्थान दिया जाता है। व्याहारिक ज्ञान के महत्व को ध्यान में रखते हुए पत्रिका को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना हमारी मुख्य प्राथमिकता है। अतः इस ई–पत्रिका में वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के अतिरिक्त आइसीएफआरई एवं अधीनस्थ संस्थानों तथा केंद्रों के साथ ही संस्थान के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले राज्य उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा एवं पंजाब के वन विभागों से भी लेख आमंत्रित किए जाते रहे हैं।

मैं पत्रिका के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में संबद्ध अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हार्दिक बधाई देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि इस प्रकार के ज्ञानवर्धक अंक नियमित रूप से प्रकाशित होते रहेंगे।

एस के थॉमस

एस.के. थॉमस
कुलसचिव

मुख्य संपादक की कलम से ....

डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान ई–पत्रिका का अंक–05 सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये मुझे अति प्रसन्नता है। हिन्दी भाषा के माध्यम से वानिकी से जुड़े समस्त हितधारकों तक वानिकी से संबंधित विभिन्न विषयों पर आलेखों को उनके जानकारी तथा उपयोग के लिये पहुँचाना इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

ई–पत्रिका के इस अंक में बड़े ही ज्ञानवर्धक तथा रोचक लेख सम्मिलित किये गये है। विभिन्न प्रकार के बहुउपयोगी पादपों यथा चित्रक (पेज–8), बेल (पेज–16), चिलगोजा (पेज–1), शहतूत (पेज–29) तथा फोग (पेज–26) से संबंधित जानकारी को बड़े ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। व्यावसायिक स्तर पर पौधों के उत्पादन तथा दुलर्भ तथा लुप्त प्राय प्रजातियों के संरक्षण में पादप ऊतक संवर्धन तकनीक की महत्ता को दर्शाया गया है (पेज–21)। काला शीशम के गुणवत्तापूर्ण रोपण स्टॉक तैयार करने के लिये आवश्यक कायिक प्रजनन विधि का संबंधित लेख में विस्तार से वर्णन किया गया है (पेज–23)। पॉपलर जैसी व्यावसायिक फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीट पॉपलर पत्ती बाइंडर के जीवन चक्र तथा इसकी कीट प्रबंधन प्रयासों में उपयोगिता की जानकारी (पेज–13) पर प्रस्तुत आलेख से प्राप्त की जा सकती है।

कणफलक (पार्टिकल बोर्ड) बनाने तथा इस उद्योग क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों (पेज–6) तथा जलवायु परिवर्तन का मधुमक्खियों तथा परागण प्रक्रिया पर प्रभाव (पेज–11) की जानकारी बहुत ही महत्वपूर्ण है। अन्य रोचक लेखों में जैविक नियंत्रण एजेंट (पेज–15), गंगा का महत्व तथा गंगा के प्रदूषण की रोकथाम के उपायों (पेज–17) तथा टिड्डी द्वारा वन वनस्पति के लिये खतरा (पेज–32) से संबंधित जानकारी भी संकलित की गयी है। पत्रिका के अंत में वन अनुसंधान संस्थान द्वारा जनवरी–जून, 2021 अवधि के दौरान आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ भी प्रस्तुत की गयी है।

मैं इस अंक के सभी सम्मानित लेखकों तथा पत्रिका के संपादन कार्य से जुड़े सभी सहयोगियों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी

वन अनुसंधान ई–पत्रिका
जनवरी–जून, 2021

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	निदेशक की कलम से		
	कुलसचिव की कलम से		
	मुख्य संपादक की कलम से		
1	*पाइनस जिरारडियाना* (चिलगोजा) उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों का महत्वपूर्ण वृक्ष एवं स्थानीय जनजातीय समुदायों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में इसका महत्व	डॉ. स्वर्ण लता एवं वर्षा	1-5
2	कण फलक (पार्टिकल बोर्ड)	डॉ. डी.पी. खाली एवं लक्ष्मण सिंह	6-7
3	स्वास्थ्यवर्धक औषधीय पौधा: चित्रक (Plumbag zeylanica)	अजय गुलाटी, डॉ. चरण सिंह एवं रामबीर सिंह	8-10
4	परागण सेवाएं एवं जलवायु परिवर्तन	अखिल कुमार एवं दृष्टि शर्मा	11-12
5	पॉपलर पत्ती बाइंडर *बोटीओडेस डिनियासलिस* (*लेपिडोप्टेराः पाइरालिडी*)	डॉ. अरविंद कुमार एवं जितेन्द्र कुमार	13-14
6	जैविक नियंत्रण एजेंट	अतिराज राठी एवं डॉ. संगीता सिंह	15
7	धार्मिक एवं औषधीय फल वृक्ष–बेल	डॉ. नवीन कुमार बौहरा	16
8	गंगा का महत्व और गंगा–तंत्र संरक्षण में उपलब्धियाँ	डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल, रेणुका व्यास, विकेश व्यास, सोनी सिंह एवं हिमानी नेगी	17-20
9	पादप ऊतक संवर्धनः अनेक समस्याओं का एकल समाधान	डॉ. पूजा शर्मा	21-22
10.	काला शीशम (*डलबर्जिया लैटिफोलिया*) के उच्च गुणवत्ता युक्त पौधे तैयार करने की कायिक प्रजनन विधि	डॉ. प्रमोद कुमार, पवन कुमार पटेल एवं मुकेश कुमार सोनकर	23-25
11.	फोग (*कैलीगोनम पॉलीगोनोइड्स*. लिन) :राजस्थान का एक बहुउपयोगी मरूस्थलीय पादप	एस.आर. बालोच, नरेन्द्र कुमार कडेला एवं कुल्लोली रविकिरण निगंप्पा	26-28
12.	शहतूत फल के उपयोग एवं इसके औषधीय गुण	सहदेव चौहान, पवन कुमार, बी.के. गोयल एवं वी.पी. पांडे	29-31
13.	टिड्डी: वन वनस्पति के लिए अंतर्राष्ट्रीय खतरा	तन्मय कुमार भौई	32-33
14	जनवरी–जून, 2021 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम		34-35

वन अनुसंधान ई-पत्रिका
अंक-05
जनवरी–जून, 2021

पाइनस जिरारडियाना (चिलगोजा): उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों का महत्वपर्ण वृक्ष एवं स्थानीय जनजातीय समुदायों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में इसका महत्व

डॉ. स्वर्ण लता, वैज्ञानिक–डी एवं वर्षा, कनिष्ठ परियोजना अध्येता
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचयः चिलगोजा उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों में पाये जाने वाले शंकुधारी वृक्षों में से एक है जो अपनी स्वादिष्ट गिरि के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। भारत में पाये जाने वाले शंकु (पाइनस) की छः प्रजातियों में यह ही केवल एक ऐसा शंकुवृक्ष है जो गिरि प्रदान करता है। इसका वनस्पतिक नाम *पाइनस जिरारडियाना* (*Pinus gerardiana*) है तथा यह प्रजाति पाइनेसी कुल से सम्बंध रखती है। आमतौर पर एवं व्यावसायिक तौर पर इसे चिलगोजा एवं नेओजा के नाम से जाना जाता है। इसे विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग नामों से भी जाना जाता है। अफगानिस्तान में इसे 'जलगोजा', पाकिस्तान के चित्राल में 'चिजिन', कश्मीर में 'चिरी' एवं हिमाचल प्रदेश के पांगी क्षेत्र में 'मिरी' एवं किन्नौर में 'री' के नाम से जाना जाता है। भारत में चिलगोजा की खोज ब्रिटिश सैन्य अधिकारी कैप्टन पैट्रिक जिरार्ड ने 1832 में की तथा उन्हीं के नाम पर इसका वानस्पतिक नाम *पाइनस जिरारडियाना* रखा गया। उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों में उगने के साथ यह वहाँ की कठिन भौगोलिक और जलवायु परिस्थितियों में जीवित रहने में सक्षम है जिस कारण इसे चट्टानी पर्वत के विजेता के नाम से भी जाना जाता है ।

चित्र–1: चिलगोजा – एक सदाबहार वृक्ष

विवरणः चिलगोजा एक सदाबहार वृक्ष है जो पिरामिड एवं शंक्वाकार दिखाई देता है। अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर यह 25 मीटर तक की ऊँचाई एवं 4 मीटर की परिधि प्राप्त कर लेता है। इसमें एक प्राथमिक जड़ होती है जिसमें से बहुत से सहायक जड़ें निकलती हैं जो वृक्ष को मिट्टी में मजबूती से स्थापित करती हैं। इस वृक्ष की जड़ में कवक *माइकोराईजा* (*Fungal Mycorrhi*) पाया जाता है जो कवक *माईसिलियम* (*Fungal Mycelium*) एवं जड़ों के बीच की सहजीवी संरचना है। कवक पोषक तत्वों के अवशोषण में मदद करता है तथा रोगजनकों से बचाता है और इसके बदले जड़ें कवक को आश्रय प्रदान करती हैं। इसका तना सीधा, लंबा, बेलनाकार एवं बड़ी शाखाओं से भरा होता है। इसकी छाल हल्के हरे एवं सलेटी रंग की पतली एवं चिकनी होती है एवं लगातार इसकी पपड़ीदार छाल गिरती रहती है। इसकी पत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं– छिल्केदार एवं गुच्छेदार। छिल्केदार पत्तियाँ भूरे रंग की पतली, सपाट एवं बहुत छोटी होती हैं। गुच्छेदार पत्तियाँ छोटी शाखाओं पर होती हैं जो सुई के आकार की लंबी गहरे हरे रंग की होती हैं। शंकु दो प्रकार के होते हैं– नर शंकु एवं मादा शंकु जो मई–जून के महीने में उगते हैं। नर शंकु काष्ठीय नहीं होते हैं जो 15–40 के समूह में छोटी शाखाओं पर उगते हैं जो वृक्ष पर एक सप्ताह तक रहने के बाद सुख कर गिर जाते हैं। नर शंकुओं से बहुत सारे परागकण उत्पन्न होते हैं। वृक्ष 25–30 वर्ष की आयु के बाद ही मादा शकुओं का निर्माण करता है। मादा शंकु काष्ठीय होते हैं जिनमें बीज लगते हैं। मादा शंकु 2–4 के समूह में लंबी शाखाओं पर उगते हैं। युवा मादा शंकु प्रथम वर्ष आकार में थोड़ा ही बढ़ता है परन्तु द्वितीय वर्ष यह तेजी से बढ़ता है तथा जुलाई के महीने के अंत तक यह पूर्ण आकार ले लेता है। मादा शंकु (सितम्बर–अक्तूबर) में पूरी तरह से परिपक्व हो जाते हैं तथा जब यह 22 महीने के हो जाते है तो इनसे बीज गिर जाते हैं। कभी–कभी पुराने शंकु बीजों के गिर जाने के बाद भी वृक्षों से जुड़े रहते हैं जिस कारण तीनों वर्षों

के प्रतिनिधि शंकु एक ही वृक्ष पर देखे जा सकते हैं। एक मादा शंकु में लगभग 40–70 बीज पाये जाते हैं। बीजों का बाहरी आवरण हल्का भूरा होता है। बीजों का आकार सीधा एवं बेलनाकार तथा 2.63 से. मी. 0.46 से. मी. 0.41 से. मी. होता है। बीज तेलयुक्त होते हैं एवं इनकी जीवन शक्ति लंबे समय तक नहीं होती है ।

चित्र–2: मादा शंकु

चित्र–3: मादा शंकु बीज

वितरण एवं वास: पूरे विश्व में चिलगोजा का वितरण बहुत कम है यह अफगानिस्तान, उतरी बलूचिस्तान, पाकिस्तान के कुर्रम घाटी एवं भारत के उत्तरी–पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों में ही 1800–3300 मीटर की ऊँचाई में पाया जाता है। भारत में यह हिमाचल प्रदेश के किन्नौर एवं चंबा (पांगी एवं भरमौर) जिलों एवं जम्मू–कश्मीर के किश्तवाड़ जिले में ही पाया जाता है। यह वृक्ष अक्सर समूहों में पाये जाते हैं। ठुम (*Fraxinus xanthoxyloide*), देवदार (*Cedrus deodara*), कायल (*Pinus wallichiana*), ब्रे ओक (Quercusile), खनोर (*Aesculus indica*), अखरोट (*Juglans regia*), चूली (*Prunus armeniaca*), बेमी (*Prunus mira*), सेब (*Malus pumila*) एवं करू (*Celtis australi*) चिलगोजा के साथ पायी जाने वाली वृक्ष प्रजातियाँ तथा आगरू (*Daphne oleoides*), कागशोच (*Lonicera hypoleuca*), छरमा (*Hippophae rhamnoides*) जंगली गुलाब (*Rosa webbiana*), चो शोच (*Rubus fruticosus*), खुम (*Lonicera quinquelocularis*), सोमलता (*Ephedra gerardiana*), चुतरूम (*Berberis lycium*), कास्टिंग (*Indigofera heterantha*) एवं ब्यूर (*Artemesiamaritima*) झाड़ीनुमा प्रजातियाँ हैं।

परागण एवं निषेचन: इस वृक्ष में परागण हवा द्वारा होता है। नर शंकु वृक्ष की निचली शाखाओं पर होते हैं तथा मादा शंकु प्रायः ऊपरी शाखाओं पर पाये जाते हैं, जिसके कारण इन वृक्षों में स्वतः परागण नहीं होता है। परागकण आमतौर पर जून–जुलाई में निकलते हैं जो हवा द्वारा मादा शंकु तक पहुँचते हैं। परागण के बाद परागकण 11–12 महीने निष्क्रिय रहते हैं एवं निषेचन दूसरे वर्ष मई–जून के दौरान होता है। जैसे ही दूसरे वर्ष बीज गठन सम्पन्न होता है मादा शंकु शुष्क एवं सख्त हो जाता है।

बीज एकत्रण, निष्कर्षण एवं भंडारण: चिलगोजा के बीज शंकुओं के भीतर होते हैं इसलिए बीजों का एकत्रीकरण स्थानीय लोगों द्वारा सितम्बर–अक्तूबर महीने में वृक्षों पर लगे हरे शंकुओं को दराट एवं कुल्हाड़ी से काट कर किया जाता है। शंकुओं को एकत्रित कर गौशाला एवं छाया वाले स्थान पर एक माह के लिए रखा जाता है जब तक शंकुओं के सहपत्र खुल नहीं जाते। बीजों को शंकुओं से अलग करने के लिए शंकुओं को चार टुकड़ों में गंडासा (बासींग) की मदद से काटा जाता है तथा महिलाएं कटे हुए शंकुओं से चिलगोजा के बीज अलग करती हैं। बीजों को अच्छी तरह सुखाने के बाद हवा बंद डिब्बों में कम तापमान वाले जगहों पर 1–2 साल तक भंडारित किया जाता है।

प्राकृतिक पुनर्जनन एवं पौधरोपण तकनीक: चिलगोजा का प्राकृतिक पुनर्जनन बीजों द्वारा होता है। बीज अक्तूबर–नवंबर महीने में वृक्षों से गिर जाते हैं तथा मार्च–अप्रैल के महीने में उगते हैं। वर्तमान में चिलगोजा के जंगलों में इसका प्राकृतिक पुनर्जनन बहुत कम (15 प्रतिशत) है इसका मुख्य कारण चिलगोजा के शंकुओं का असंवहनीय एवं सम्पूर्ण कटाई है। इसके अलावा इसके आवास क्षेत्रों की विकट भौगोलिक और जलवायु परिस्थितियों, कीटों द्वारा क्षति एवं अनियमित बीज वर्षों के

साथ अन्य मानव जनित कारणों के कारण भी इसके बीजों का अंकुरण कम रहता है। जिस कारण इसका प्राकृतिक पुनर्जनन चट्टानों के खाली हिस्सों, दरारों एवं झाड़ीनुमा पौधों के बीच में ही देखने को मिलता है। चिलगोजा को नर्सरी में बीजों से पौधे तैयार कर कृत्रिम पुनर्जनन तकनीक द्वारा उगाये जाते है तथा वन विभाग के विभिन्न वनीकरण कार्यक्रमों एवं योजनाओं के अंतर्गत इसके प्राकृतिक वनों में पौधरोपण किया जाता है। जिसके लिए चिलगोजा को माईकोराईजा युक्त मिट्टी से भरे 45 से.मी 12 सेमी पालीथीन बैगों में नर्सरी में उगाये जाते हैं तथा बीजों का अंकुरण 80–90 प्रतिशत होता है। नर्सरी में इसका विकास बहुत धीमा होता है इसलिए पौधों के उचित विकास के लिए पालीथीन बैगों में उगाये पौधों को 2–3 वर्ष तक नर्सरी में रखा जाता है। वनों में चिलगोजा के पौधों का रोपण बसंत या बर्फबारी से पहले किया जाता है जिसके लिए रोपण से दो महीने पूर्व 45×45×45 से०मी० के गढ्ढे 2.5×2.5 से०मी० व 3.3 से.मी. की दूरी पर बनाये जाते हैं।

1. चिलगोजा की महत्वा

चिलगोजा उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों की स्थानीय एवं अग्रिणी प्रजाति होने के कारण इन क्षेत्रों की ठंडी जलवायु एवं शुष्कता को सहन करने की अत्याधिक क्षमता रखता है तथा ढीली एवं नाजुक मिट्टी के कटाव को रोकता है। यह न केवल इस क्षेत्र की परिस्थितिकी के लिये महत्वपूर्ण है अपितु इन क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समुदाय की रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं आर्थिक स्थिति में सुधार में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है जो निम्नलिखित हैं :–

चित्र–4: महिलाएं चिलगोजा के शंकुओं से बीज अलग करते हुये

सामाजिक महत्वः

इसके बीज बहुत पोष्टिक एवं स्वादिष्ट होते हैं जिन्हें कच्चे व भून कर खाये जाते हैं। बीज हल्वा, चटनी, सत्तू, नमकीन चाय इत्यादि में सूखे मेवे के रूप में उपयोग किये जाते है। बीजों में औषधीय गुण होने के कारण बीजों का उपयोग शारीरिक कमजोरी, थकान, खांसी, जुकाम एवं मोटापे को कम करने के लिये किया जाता हैं। बीजों से निकाले गये तेल का उपयोग घावों, फोड़ों एवं छालों की मरहम पट्टी में किया जाता है। इसकी राल गठिया एवं फटी हुई एड़ीयों के उपचार हेतु उपयोग होती है। शंकुओं की राख का उपयोग बर्तन साफ करने में होता है। इसकी लकड़ी से कृषि उपकरण बनाए जाते हैं एवं शाखाओं को खेतों एवं बगीचों में बाड़ लगाने एवं नदी नालों में चलने के पुल बनाने में होता है। इसकी पत्तियों को लोग जंगलों से एकत्रित करते हैं तथा इन्हें गोशाला में बिछाने एवं खेतों में जंगली खाद के तौर पर उपयोग करते हैं। शकुओं को बीज के निकालने उपरांत सर्दियों में ईंधन के रूप में जलाया जाता है। इसकी लकड़ी ईंधन के रूप में तथा मशाल की लकड़ी (जोकती) के तौर पर उपयोग की जाती है जिसे रात के समय चलने एवं खेतों की सिंचाई हेतु उपयोग की जाती है।

2. सांस्कृतिक महत्वः चिलगोजा किन्नौर जिले के किन्नौरा जनजातीय समुदायों की संस्कृति का अभिन्न अंग है। यहाँ के स्थानीय लोग चिलगोजा के बीजों की मालाएँ बनाते हैं जिसे री मलिंग कहते हैं तथा मालाओं को विवाह एवं अन्य कार्यक्रमों (जन्म–मरण, मेलों, धार्मिक अनुष्ठानों, स्वागत इत्यादि) में सम्मान एवं स्नेह प्रकट करने हेतु देवी–देवताओं, वर–वधुओं, परिवार के सदस्यों को पहनाते हैं। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में फुलाइच मेले में विशेष मशाल नृत्य (संगपुलिंग चाशम) हेतु भी इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है। इसकी टहनियों से विवाह एवं विशिष्ट अतिथि स्थलों पर स्वागत द्वार भी बनाये जाते हैं।

आर्थिक महत्वः चिलगोजा के बीज बहुत ही पोष्टिक एवं स्वादिष्ट होते हैं तथा बीजों में कार्बोहाईड्रेट (21.6%), प्रोटीन (15.9%), वसा (49.9%), नमी (7.5%), रेशे (2.2%) और खनिज पदार्थ (2.90%) होते हैं। जिस कारण चिलगोजा के बीजों का व्यापार होता है व सूखे मेवों में चिलगोजा का विशिष्ट स्थान है। चिलगोजा की कम उपलब्धता के कारण भारतीय बाजार में चिलगोजा के बीजों के ऊंचे दाम हैं। यह चिलगोजा उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समुदायों की वनों से प्राप्त होने वाली महत्वपूर्ण नकदी फसल है क्योंकि यह इन क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समुदायों का जीवन यापन का मुख्य स्रोत है। स्थानीय लोग चिलगोजा को वनों से एकत्रित कर बीजों का व्यापार करते हैं तथा बीजों को स्थानीय बाजार एवं ठेकेदारों को 1200–1800 रुपये प्रति किलोग्राम की दर पर बेचते हैं।

प्रमुख खतरें–

1. अत्याधिक चिराईः अनियंत्रित भेड़–बकरियों की चिराई के कारण चिलगोजा वनों में उग रही नई पौध को अत्याधिक नुकसान हो रहा है। इसका मुख्य कारण ग्रामीणों में जागरूकता का अभाव है क्यूंकि वे लगातार चिराई से प्राकृतिक पुनर्जनन पर होने वाले प्रभाव से अनभिज्ञ होते हैं। जिस कारण स्थापित हो चुके पौधे नष्ट हो जाते हैं तथा चिलगोजा के नए जंगल बहुत कम देखने को मिलते हैं।

2. असंवहनीय तरीके से शंकुओं की कटाईः वर्तमान में चिलगोजा वन क्षेत्रों में शंकुओं की असंवहनीय तरीके से कटाई बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है क्योंकि इन क्षेत्रों में कृषि एवं बागवानी के प्रसार से लोग इसे अतिरिक्त आय का स्रोत समझने लग गये हैं तथा चिलगोजा एकत्रीकरण का कार्य स्वयं करने की बजाय ठेकेदारों एवं मजदूरों के माध्यम से करते हैं। ठेकेदारों एवं मजदूरों द्वारा कटाई स्थानीय लोगों की तुलना अधिक विनाशकारी हैं क्योंकि वे भविष्य में शंकुओं के उत्पादन में दिलचस्पी नहीं लेते तथा अपने वार्षिक अनुबंध पर ध्यान देते हुए सभी शंकु निकालने के निर्देश देते हैं। जिस कारण प्राकृतिक पुनर्जनन हेतु उचित मात्रा में बीज उपलब्ध नहीं हो पाते है तथा वनों में बहुत कम पुनर्जनन देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त शंकुओं की कटाई के दोरान वृक्षों से सभी शंकुओं को एकत्रित करने के लिए बहुत बड़ी–बड़ी शाखाओं को भी अपनी सहूलियत अनुसार काटते हैं जिस कारण इन वृक्षों को भारी क्षति पहुँच रही है।

चित्र – 5: चिलगोजा की मालाएँ पहने दूल्हा–दूलहन

चित्र – 6: चिलगोजा की पत्तियों का खाद के तौर पर उपयोग

3. पक्षी, मूषक एवं सरीसृप द्वारा क्षतिः बन्दर, चूहे, छिपकली एवं पक्षी वृक्षों पर लगे बीजों को खाते हैं तथा शंकुओं को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके अतिरिक्त वे जमीन पर गिरे बीज एवं उगने वाले नई पौध को भी खा जाते हैं जिसके कारण भी पुनर्जनन प्रभावित होता है।

4. कीटों एवं रोगाणुओं द्वारा क्षतिः शंकुओं एवं बीजों के गठन के दोरान कीटों एवं रोगाणुओं से भी चिलगोजा को अत्याधिक नुकसान होता है। *Leptoglossus corcus, Tetyrabipuntata, Gnophothripsfuscus, Nepytiasemiclusaria, Rhyacionia spp.* एवं *Cydiaspp* शंकुओं एवं बीजों को अत्यधिक नुकसान करने वाली प्रजातियाँ हैं। इसके अतिरिक्त *Pennicillium, Aspergillus, Mucor* एवं *Rhizopus* फफूंद भी बीजों में स्थापित होकर उन्हें नुकसान पहुंचाती हैं।

5. विकासात्मक गतिविधियों द्वारा क्षतिः विकासात्मक गतिविधियां मुख्यतः पन बिजली परियोजनाओं, सड़कों एवं इमारतों के निर्माण, कृषि एवं बागवानी के प्रसार इत्यादि के कारण चिलगोजा के प्राकृतिक आवासों एवं प्राकृतिक संख्या पर अत्याधिक प्रभाव पड़ रहा हैं।

इस तरह के गंभीर जैविक हस्तक्षेप और प्राकृतिक पुनर्जनन में कमी के कारण भविष्य में चिलगोजा उत्तर पश्चिमी हिमालय के शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों से विलुप्त हो सकता है। वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union for Conservation of Nature) ने चिलगोजा को भविष्य में विलुप्त होने वाली (Near Threatened) प्रजाति की श्रेणी में भी रखा है। इसलिए इस प्रजाति के संरक्षण और सतत् उपयोग की अत्याधिक आवश्यकता है ।

चित्र – 7–8: किटों एवं पक्षियों द्वारा क्षति

चित्र – 9: मिट्टी के कटाव द्वारा क्षति

चित्र – 10: बागवानी प्रसार से क्षति

डॉ. स्वर्ण लता
वैज्ञानिक–डी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका
अंक-05
जनवरी–जून, 2021

कण फलक (पार्टिकल बोर्ड)

डॉ. डी.पी. खाली, वैज्ञानिक–एफ एवं लक्ष्मण सिंह बिष्ट, पी.एच.डी. शोधार्थी
वन उपज प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान

कण फलक होता क्या है? कल फलक एक ऐसा फलक होता है जिसमें लकड़ी के कणों को लेकर दबा दिया जाता है। कण फलक लकड़ी के छोटे कणों को योगज पदार्थ के साथ दबा कर बनाया जाता है। कण फलक का मूल्य नार्मल प्लाईवुड से काफी कम होता है।

कण फलक निर्माण की विधिः–

कण फलक का सर्वप्रथम उत्पादन जर्मनी में हुआ था। यह सबसे पहले 1887 में बनाया गया।

जब हुबर्ड ने आर्टिफिसियल वुड का निर्माण किया। कण फलक की निर्माण विधि तकनीकी दृष्टि से काफी जटिल है। इच्छित गुण युक्त कण फलक निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि निर्माण विधि के विभिन्न परिचालन स्तरों पर उचित नियंत्रण हो। भिन्न कच्चे माल से कण फलक निर्माण के लिये विभिन्न स्तरों पर उचित परिवर्तन किये जाते है। कण फलक बनाने में सबसे पहले लकड़ी के छोटे–छोटे चिप्स बनाये जाते है, उसके बाद लकड़ी के चिप्सों को कन्डेक्स किया जाता है, जिसमें हमें लकड़ी के कण प्राप्त होते है। फिर लकड़ी के कणों को योगज पदार्थ के साथ रोटेटरी ड्रम में मिक्स किया जाता है। अब एक वर्गाकार खाचे में कणों की मैट बनायी जाती है। उसके बाद प्रेसिंग मशीन में मैट को उचित तापक्रम और उचित प्रेसर में दबा दिया जाता है। इस प्रकार हमें तैयार कण फलक प्राप्त होता है।

चित्र:01 – लकड़ी के चिप्स

चित्र:.2 – लकड़ी के कण

कण फलक के प्रकारः–

कम घनत्व का कण वर्गीकरणः– घनत्व के आधार पर कण फलक तीन प्रकार का होता है–

चित्र:03 – रोटेटरी ड्रम

चित्र:04 – प्रेसिंग मशीन

1. कम घनत्व का कण फलकः कण फलक जिसका घनत्व 400 किलोग्राम प्रति घन मीटर या इससे कम होता है।

2. मध्यम घनत्व का कण फलकः कण फलक जिसका घनत्व 500 से 900 किलोग्राम प्रति घन मीटर के बीच होता है।

3. उच्च घनत्व का कण फलकः कण फलक जिसका घनत्व

चित्र:05 – कण फलक

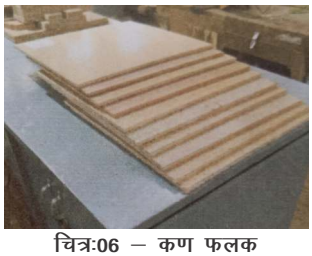
चित्र:06 – कण फलक

900 से 1200 किलोग्राम प्रति घन मीटर के बीच होता है।

निर्माण विधि के आधार पर वर्गीकरणः बनाने की विधि के आधार पर कण फलक चार प्रकार का होता हैं–

1. चपटी प्लेटन दावित फलकः– इन फलकों का निर्माण रेजिन सम्मिश्रित कणों की मैट को चपटी समानान्तर प्लेटन वाले दाब यंत्र में दबाकर किया जाता हैं। फलक के अन्दर कण सभी दिशाओं में समान रूप से बिखरे होते हैं। अतः लम्बाई तथा चौड़ाई दोनों दिशाओं में फलक के शक्ति गुण लगभग बराबर होते हैं।

2. एक्सट्रडिड दाबित फलकः– रेजिन सम्मिश्रित कणों का पकाना तथा दबाना एक्सट्रडिड गर्म प्लेटन दाब यत्रं में एक ही साथ करके इन फलकों का निर्माण किया जाता हैं। इस विधि में सभी कणों का घुमाव एक ही दिश में होने के कारण फलक के शक्ति गुण लम्बाई तथा चौड़ाई में भिन्न होते हैं। फलक के शक्ति गुण दाब की लम्ब दिशा में अधिक तथा समानान्तर दिशा में कम होते हैं।

3. वीनियर परती कण फलकः– इन फलकों का निर्माण कण फलक को या तो वीनियर या प्लाईकाष्ठ की परतों के बीच में सरेशित करके किया जाता हैं।

4. पटलित कण फलकः– इन फलकों का निर्माण कण फलकों को रेजिन युक्त कागज की परत के बीच में सरेशित करके किया जाता हैं।

कण फलक के लिए कच्चा मालः– कण फलक उद्योग में प्रयोग होने वाले कच्चे माल को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता हैं:

1. काष्ठः– वन तथा काष्ठ उद्योग से प्राप्त अपशिष्ट काष्ठ तथा कृषि से प्राप्त लिगनिन युक्त अन्य सेल्यूलोजिक पदार्थ

2. रेजिनः– बंधकी के रूप में प्रयोग होने वाले रेजिन जैसे यूरिया फार्मल्डिहाइड तथा फीनॉल फार्मल्डिहाइड।

3. योगज पदार्थः– कण फलक के कुछ विशेष गुणों में जैसे की जल अवशोषण, दीमक, घुन तथा अग्नि अवरोधक गुणों में सुधार के लिये प्रयोग होने वाले रासायनिक योगज पदार्थ।

कण फलक के लाभः– कण फलक के बहुत लाभ हैं। इनमें से कुछ लाभ निम्न प्रकार से हैंः–

(1) कण फलक बनाने में किसी भी प्रकार के अपशिष्ट काष्ठ, कृषि क्षेत्र से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थ जिनसे उपयुक्त आकार तथा ज्यामिति के कण प्राप्त हो सकते हैं प्रयोग किये जा सकते हैं।

(2) कण फलक को लकड़ी के तख्ते की अपेक्षा बड़े, आकार में बनाया जा सकता है। साथ ही काष्ठ में प्रायः उपस्थित प्राकृतिक दोषों जैसे कि गांठ इत्यादि भी कण फलक में नहीं होते।

(3) कण फलक को 50 मि.मी. तक की मोटाई में इच्छानुसार बनाया जा सकता हैं।

(4) कण फलक की सतह काफी समतल एवं चिकनी होती है जिस पर काष्ठ के समान ही लाक्षलेप, वार्निस या रंगालेप इत्यादि किया जा सकता है।

(5) काष्ठ की अपेक्षा कण फलक में दीमक तथा घुन इत्यादि से क्षय प्रतिरोधक शक्ति अधिक होती है।

कण फलक उद्योग से प्रदूषणः–

कण फलक उद्योग से आस–पास के वातावरण में काफी मात्रा में प्रदूषण होता है। यह कारखाने में कार्य करने वाले लोगों तथा आस–पास के क्षेत्र की जनसंख्या को भी प्रभावित करता है। भारत में कण फलक उद्योग के क्षेत्र में प्रदूषण नियंत्रण के लिये बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है, लेकिन विदेशों में इस क्षेत्र में काफी ध्यान दिया जा रहा है। कण फलक उद्योग के क्षेत्र में प्रदूषण की रोकथाम के लिये नये विधि बनाये गये हैं। इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य यह है कि पहले लगे हुए तथा भविष्य में लगने वाले कण फलक मिलों में प्रदूषण नियंत्रण की समूचित व्यवस्था की जाय तथा इस उद्योग के प्रबन्धक भविष्य में होने वाली वातावराण के प्रदूषण से होने वाली कठिनाईयों के लिये तैयार रहें। स्वीकृत स्तर तक प्रदूषण को कम करने के लिये लगाये जाने वाले उपकरण के कारण, कारखाने की प्रारम्भिक लागत में काफी अन्तर आ जाता है तथा यह बाजार में कारखानों द्वारा बनाये गये माल की कीमत को भी प्रभावित करता हैं। कण फलक उद्योग में प्रदूषण के बहुत से स्त्रोत हैं।

जैसा कि– कणों का हवा में उड़ना, कणों को सुखाने में शोषक से निकली हुई गैस, यूरिया रेजिन बनाने में फार्मलीन के कारण, रेजिन में उपस्थित स्वतंत्र फार्मलीन के वाष्पीकरण के कारण, समतल करने वाली मशीनों से निकलने वाली धूल के कारण, बायलर से निकलने वाली राख व धूए के कारण।

इन प्रदूषण की कठिनाईयों के समाधान के लिये कुछ सुझाव इस प्रकार हैं –

- कण बनाने, छानने तथा सम्भरण क्षेत्र को ढककर रखना।
- शोषक से निकलने वाली गैसों को पुनः प्रयोग करना या इन गैसों को स्क्रूवर द्वारा साफ करना।
- कारखाने से निकलने वाली गैसों, धूल के कणों को दूर करने के लिये उच्च तापीय रेशेदार कांच के फिल्टर का प्रयोग करना।
- बायलर से निकलने के वाली गैसों के लिए स्थिर विद्युत आवक्षेपकों का प्रयोग करना।

कण फलक उद्योग के क्षेत्र में अनुसंधानः–

बाजार में अच्छी मांग के कारण आने वाले कण समय में कण फलक उद्योग बढ़िया और बेहतर साबित हो सकता है। औद्योगिक दृष्टि से यह भी देखा गया है कि उपयोगकर्ता अच्छी गुणवत्ता वाले कण फलक के लिए वास्तविक कीमत का भुगतान काने के लिए तैयार होते है। भारतीय बाजार कण फलक के लिए उज्जवल सम्भावना दिखाता है। भारत में कण फलक के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य मुख्यतया वन अनुसंधान संस्थान देहरादून, प्लाईकाष्ठ उद्योग बंगलोर, केन्द्रीय भवन निर्माण संस्थान रूड़की में किया जा रहा है। वन अनुसंधान संस्थान देहरादून, विगत वर्ष से पापुलर के कण फलक की गुणवत्ता सुधार हेतु शोध चल रहा है। जिसमें अग्निमन्दक रसायनों का कण फलक में परिक्षण किया जा रहा है। शोध परिणाम यह दर्शाते है कि यदि कण फलक को उचित सघनता (20 प्रतिशत) वाले रसायनों में एक निश्चित अवधि (30 मिनट) के लिये डुबाया जाता है, तो कण फलक की अग्निरोधक क्षमता में वृद्धि पाई गई तथा कण फलक के टूटने से बचने की क्षमता में भी उचित स्थिति पाई गई। परीक्षण में निम्नलिखित रसायनों का मिश्रित प्रयोग किया गया।

1– डाई अमोनियम फॉस्फेट + अमोनियम सलफेट + बोरेक्स + जिंक क्लोराइड।

2– सोडियम सिलिकेट + फॉस्फोरिक एसिड+ बोरिक एसिड।

शोध में यह पाया गया कि डाई अमोनियम फॉस्फेट, अमोनियम सलफेट, बोरेक्स, जिंक क्लोराइड कि मिश्रण से सोडियम सिलिकेट, फॉस्फोरिक एसिड, बोरिक एसिड के मिश्रण की अपेक्षा अच्छे परिणाम प्राप्त हुए।

डॉ. डी.पी. खाली
वैज्ञानिक–एफ

वन अनुसंधान ई-पत्रिका
अंक-05
जनवरी–जून, 2021

स्वास्थ्यवर्धक औषधीय पौधा : चित्रक (*Plumbago zeylanica*)

अजय गुलाटी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, डॉ0 चरण सिह, वैज्ञानिक–एफ एंव रामबीर सिहं, वैज्ञानिक–ई, विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वनों में असंख्य औषधियां प्राकृतिक रूप से विभिन्न जलवायु में स्वयं पैदा होती है जिनका अनादिकाल से मानव रोग निवारण हेतु प्रयोग होता आ रहा है। सदियों से मानव ने अपने पोषण के लिए प्रकृति का दोहन किया है, वनों को काटा गया हैं, औषधियों को अप्राकृतिक रूप से वनों से निकालकर समाप्त किया जा रहा है तथा उनकी प्राप्ति असम्भव हो गई है। कई बहुमूल्य औषधियां व अन्य पादप लुप्त हो गये हैं, इन लुप्त औषधियों को कृषिकरण करके ही बचाया जा सकता है। हमें प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर के संरक्षण तथा व्यवसायिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक ढंग से इनकी खेती को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है।

आयुष मंत्रालय, भारत सरकार ने अपने सर्वेक्षण में विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा औषधीय बाजार 2050 तक 5 ट्रिलियन डॉलर होने का अनुमान लगाया है। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून के सहयोग से भारत के औषधीय पौधों के बाजार का वर्तमान मांग और आपूर्ति परिदृश्य का आकलन किया गया। वर्ष 2014–15 के लिए औषधीय पौधों की वाणिज्यिक मांग का अनुमान 5,12,000 मीट्रिक टन पाया गया है। जिसकी बाजार कीमत रूपयें 7000 करोड़ आंकी गई है।

भारत में औषधियों की बढ़ती हुई मांग तथा बाजार की स्थितियों को देखते हुए किसान इसकी खेती करके अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकता है क्योंकि यहां इन औषधीय पौधों की खेती के लिए अनुकूल वातावरण भी है। देश में कृषि वानिकी के साथ–साथ औषधीय पादपों की खेती की अपार सम्भावनायें है क्योंकि यहाँ की अधिकांश भूमि इसके लिये उपयुक्त है तथा जलवायु भी औषधीय पादपों के कृषिकरण के लिए सर्वथा अनुकूल है। इन क्षेत्रों में, जहाँ की जलवायु शुष्क एवं अर्द्धशुष्क होने के कारण, विभिन्न औषधीय पौधे जैसे–आवंला, बेलपत्र, लसूड़ा, अनार, गुग्गल, जटरोफा, तेजपत्र, पत्थरचूर, धतूरा, सफेदा, कड़ीपत्ता, फालसा, करौंदा, ग्वारपाठा, मेंहदी, ईसबगोल, अश्वगंधा, सर्पगंधा, कपूर, सदाबहार, अमलतास, आक, अपामार्ग, दारूहल्दी, कौंच, मुलेठी, कालमेघ, सतावर, चित्रक व गुड़मार इत्यादि फसलों की खेती पारम्परिक कृषिकरण में भी आसानी से की जा सकती है।

परिचयः– चित्रक *प्लंबगिनेसी* कुल का एक झाड़ीयुक्त औषधीय पौधा है जिसकी ऊँचाई 1.0 से 2 मीटर होता है। चित्रक सम्पूर्ण भारतवर्ष में उत्पन्न होती है। यह विशेषकर उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत, बंगाल, उत्तराखण्ड, बिहार में प्राप्त होती है। चित्रक तीन प्रकार की प्रजातियां पाई जाती हैं, सामान्यतः सफेद चित्रक (*Plumbago zeylanica*) का उपयोग विभिन्न औषधीयों में किया जाता है। चित्रक को लाल, बलुई दोमट तथा काली मिट्टी में आसानी से उगाया जा सकता है। इसको किसी विशेष प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु इसके लिए बलुई मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। इसकी पत्तियों, छाल तथा जड़ों का उपयोग औषधीय के रूप में किया जाता है। पौधे में जड़ के पास से ही पतली लम्बी शाखाएं निकलती है जो चिकनी एवं हरे रंग की होती है, इसकी पत्तियां 8 से 10 सेमी लम्बी एवं 4 से 6 सेमी चौड़ी चमकदार हरे रंग तथा कोमल होती है। सितम्बर से नवम्बर के मध्य सफेद एवं लाल रंग के फूल गुच्छे में निकलते है इसके फल लम्बे एवं गोल होते है तथा इन फलों को पकने में एक महीना लगता है। जिसमें एक बीज होता है, इसकी जड़ ऊंगली की तरह मोटी होती है एवं इस औषधी की जड़ का स्वाद तीखा एवं कड़वा होता है। इसकी जड़ में पीले वर्ण का पदार्थ होता है, जिसे प्लेम्बेजिन कहते है। यह अधिकतम 0.9 प्रतिशत होता है। इसके अलावा फलशर्करा, द्राक्षशर्करा तथा प्रोटिएज एंजाइम होते है। प्लेम्बेजिन शरीर के स्नायु तत्रं को उत्तेजित करता है तथा यह अधिक मात्रा में निष्क्रियता लाकर रक्त भार में कमी भी कर सकता है। यह तेज जलन करने वाला तथा कृमि एवं जीवाणु नाशक पदार्थ है। यह ज्यादा मात्रा में हदय को भी नुकसान पहुँचा सकता है, यह मूत्र, पित्त और पसीने की क्रिया को भी उत्तेजित करता है।

चित्र–1: चित्रक का पुष्पों सहित पौधा

औषधीय उपयोगः–

चित्रक कटु, अग्निवर्धक, त्रिदोश नाशक, पाचक, रसायन अत्यन्त उपयोगी औषधि है। यह बुखार, अपच, दर्द, खांसी, श्वसनतंत्र, कुष्ठरोग, खुजली, प्रमेह, घावों आदि रोगों में लाभदायक है। इसका उपयोग भूख बढ़ाने, शरीर में स्फूर्ति लाने और अजीर्ण जैसे विकारों को समाप्त करने में सहायक होता है। यह खून को शुद्ध करता है तथा सूजन को कम करता है। मोटापे को कम करने के लिए इसका उपयोग करते है तथा स्त्रियों के गर्भाशय को ताकत देकर मजबूत बनाता है। इसका उपयोग कैंसर तथा लीवर के घाव को ठीक करने मे लाभप्रद है। खून की कमी, सफेद दाग तथा दाद में लाभ पहुँचाता है। संधिभूल, आमवात, लकवा में इसके सेवन से लाभ पहुँचता है, लीवर एवं प्लीहा से संबंधित समस्याओं में भी यह एक अत्यन्त कारगर औषधि के रूप में काम करता है। बुखार या किसी भी लम्बी बीमारी के बाद, ठीक होने के पश्चात् शरीर में आयी कमजोरी को दूर करने में यह एक बेहतर औषधि है। इस औषधि में पाया जाने वाला कटु रस भोजन को ठीक से पचाने में मदद करता है और पाचन क्रिया को उद्दीपित करता है। बवासीर में इसके उपयोग से रोग ठीक करने में सहायक होता है। अतिसार में इस औषधि की छाल का उपयोग दही के साथ सेवन करने से रोग को ठीक करने में मदद करता है, इसकी जड़ से प्राप्त तेल जोड़ों के दर्द, गठियावात एवं लकवा में उपयोगी है। पत्तियों से प्राप्त दूध के रस को त्वचा में लगाने से त्वचा रोग में लाभदायक है। इसके उष्ण गुण के कारण गर्भाशय पर उत्तेजित प्रभाव पड़ता है जिससे गर्भवती स्त्री में गर्भपात की संभावना रहती है, इसलिए गर्भवती स्त्रियों को इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। अधिक मात्रा में लेने से यह शरीर में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करता है जैसे आमाषय में जलन एवं अन्य रोगों में भी इसका उपयोग हमेशा कुशल वैद्य की सलाह से उपयुक्त मात्रा में करना आवश्यक है।

रोपण की विधियां–:

चित्रक को नर्सरी में बीजों एंव मातृ पौधों की कलम से उगाया जा सकता है। बीजों की अपेक्षा मातृ पौधों की कलम से पौधे आसानी से तैयार हो जाते है। बीजों द्वारा पौधे प्राप्त करने के लिये मार्च–अप्रैल में क्यारियां तैयार करके बीज को बो दिया जाता है जिससे इसकी पौध तैयार हो जाती है। मातृ पौधों से पौधे तैयार करने के लिये पौधे की 12 से 15 सेमी लम्बाई की तीन गांठों वाली कलम को काटकर क्यारियों में 5 से 6 सेमी के अन्तर में नर्सरी में लगाया जाता है। कलमों में आसानी से अंकुरण के लिये नर्सरी में 500 पी0पी0एम नेप्थलीन एसेटिक से उपचार किया जाता है। नर्सरी बेडस में मई–जून में कलमों को लगा देना चाहिए तथा एक महीने में इन कलमों का अंकुरण हो जाता है तथा इसके पश्चात् अंकुरित कलमे खेत में रोपण के लिये तैयार हो जाती हैं। रोपण से पहले खेत की गहरी जुताई की जाती है तथा पुरानी सड़ी गोबर की खाद 8 से 10 टन प्रति हैक्टयर की भूमि में मई–जून के समय मिलाया जाता है। अच्छी उपज के लिये नाईट्रोजन की 30 किग्रा, फॉस्फोरस की 40 किग्रा एवं पोटाश की 40 किलोग्राम मात्रा खेत तैयार करते समय करना चाहिए। इसके बाद खेत में पानी छोड़ना चाहिए तथा खेत को चार से पांच बार जोतकर समतल करना चाहिए। मानसून समय के जुलाई में नर्सरी में तैयार अंकुरित कलमों को खेत में लगा दिया जाता है। खेत में अंकुरित कलमों से अंकुरित कलमों की दूरी 25 से 30 सेमी तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 से 60 सेमी रखनी चाहिए। खेत में रोपण के पश्चात् एक महीने में निराई गुड़ाई करके खरपतवार को निकाल देना चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार एक–दो बार खरपतवार की सफाई कर देनी चाहिए। मानसून को छोड़कर माह में एक बार फसल को सिंचाई की आवश्यकता होती है। चित्रक की फसल के विकास के समय पर सेमी लूपर लार्वा और सूंडी का प्रकोप होता है। जो फसल में पौधों की कोपलों एवं कलियों को खाकर इसको नुकसान पहुँचातें है। इसको रोकने के लिये मैलथियान नामक कीटनाशक का 2 मिली लीटर प्रति लीटर की दर से 15–20 दिनों के अन्तर में 2 बार छिड़काव करना चाहिए। चित्रक को छाया में आसानी से उगाया जा सकता है। कृषि वानिकी के अर्न्तगत चित्रक की खेती को पोपलर के साथ इसकी अच्छी पैदावार ली जा सकती है। इसके अलावा मेलिया, गम्हार तथा फलों के पेड़ों जैसे आम, नींबू, अमरूद, आँवला के साथ भी उगाया जा सकता है।

चित्र–2: कृषिवानिकी में पोपलर एवं चित्रक की खेती

फसल की कटाई व रखरखावः– चित्रक की फसल 10–12 महीने में पक जाती है अतः फसल की कटाई 10–12 महीने बाद कर देनी चाहिए। चित्रक की जड़ों को मई या जून में खुली धूप वाले दिनों में खोदना चाहिए। खुदाई में आसानी से जड़ों को निकालने के लिए खेत में पहले सिंचाई करनी चाहिए, खेत में जड़ों को निकालने के लिए गहरी जुताई द्वारा निकाल सकते हैं। चित्रक को खुदाई के बाद जड़ों को 5 से 7 सेमी जड़ों के टुकड़े करके साफ पानी में चूने को मिलाकर तीन बार जड़ों के टुकड़े को धोकर छाया में सुखाना चाहिए। इसके पश्चात् जड़ों में 10 से 13 प्रतिशत में नमी रहने पर वायुरोधी थैलियों में बन्द करके भंडारण के लिए रख सकते है।

उपजः– चित्रक की सूखी जड़ों की पैदावार 15 कुन्तल प्रति हैक्टेयर हो जाती है तथा बाजार में यह 12000 रूपये प्रति कुन्तल के मूल्य से बिकती है। अर्थात चित्रक की एक हैक्टेयर की कुल फसल से रु0 1,80,000.00 प्राप्त हो सकते हैं। इसमें प्रति हैक्टेयर लागत रु0 61,000.00 आती है तथा शुद्ध लाभ रु0 1,19,000.00 तक प्राप्त हो सकता है।

चित्र–3: चित्रक की जड़े

चित्रक के आय–व्यय का विवरण (प्रति हैक्टेयर)

भूमि की तैयारी	– रू0 5000/–
गोबर की खाद	– रू0 10000/–
पौधशाला में कलम से पौध बनाने का खर्चा	– रू0 15000/–
पौध को खेत में रोपित करने का खर्चा	– रू0 10000/–
निराई–गुड़ाई	– रू0 5000/–
पौधों की सिंचाई	– रू0 6000/–
कीटनाशक	– रू0 1000/–
फसल का काटने एवं सुखाने का खर्चा	– रू0 6000/–
विविध खर्चा	– रू0 3000/–
कुल लागत	– रू0 61000/–
उत्पादन	
चित्रक की सूखी जड़ें	– 15 कुन्तल
चित्रक सूखी जड़ें– मूल्य (प्रति कुन्तल)	– रू0 12000/–
चित्रक की जड़ें–कुल मूल्य (15 कु0 12000 रू)–	रू0 180000/–
कुल लाभ	**– रू0 180000/–**
शुद्ध लाभ (रू0 180000–रू0 61000)	**– रू0 119000/–**

अजय गुलाटी
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

लेखकों के लिए नियम–निर्देशः

- वन अनुसंधान ई–पत्रिका के आगामी अंकों के प्रकाशन हेतु वानिकी से संबंधित अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं ई–मेल **hindiofficer@icfre.org** पते पर भेजने का कष्ट करें।
- रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।
- लेखों में शामिल छायाचित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।
- वन अनुसंधान ई–पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा हिंदी अनुभाग उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।
- प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स–आभार
संपादक मंडल

वन अनुसंधान ई-पत्रिका
अंक-05
जनवरी–जून, 2021

परागण सेवाएं एवं जलवायु परिवर्तन

अखिल कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी एवं दृष्टि शर्मा, वरिष्ठ तकनीशियन
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

भूमिकाः

फूल, पौधों, फलों और बीजों के विकास के लिए परागण प्रजनन में एक आवश्यक कदम है, इसके बिना पौधे फूलों के बीज उत्पादन करने में असमर्थ हैं। वैज्ञानिक प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं कि परागण से फसलों जैसे फल, सब्जी के बीज, मसाले, तिलहन और चारा फसलों की उपज और गुणवत्ता में सुधार होता है। कीट परागणकर्ता वैश्विक फसलों के लिए एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का कार्य करता है। बीज पौधों के यौन प्रजनन और मानव कल्याण के

चित्रः 1 परागन करते हुए मधुमक्खी

लिए एक प्रमुख पारिस्थिति की तंत्र सेवा में पोल्लीनेशन एक आवश्यक प्रक्रिया है। कई खाद्य फसलें, अनाज को छोड़कर एंटोमो फिलस हैं। विश्व की लगभग 73 प्रतिशत खेती की फसलें मधुमक्खियों द्वारा 19 प्रतिशत, चमगादड़ों द्वारा 6.5 प्रतिशतए 5 प्रतिशत ततैया द्वारा, भृंग द्वारा 5 प्रतिशत, पक्षी द्वारा 4 प्रतिशत और तितलियों और पतंगों द्वारा 4 प्रतिशत परागित की जाती हैं जिसके बदले में परागण कर्ता, नेक्टर एवं पुष्पों के पराग कण इत्यादि।

संसाधन प्राप्त करके लाभान्वित होते हैं। भारत का सौभाग्य है कि सभी चार प्रमुख मधुमक्खियों की प्रजातियां यहाँ पायी जाती है। परागणकर्ता और शहद उत्पादक के रूप में मधुमक्खियां, भारतीय कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंगहै परंतु हाल ही में मधुमक्खियों की प्राकृतिक आबादी में गिरावट चिंता का विषय बनी हुई है जिससे बागवानी की फसलों में आने वाले विगत वर्षो में गिरावट की

चित्रः 2 परागन करती हुई मधुमक्खियां

संभावना है। मधुमक्खियों की प्राकृतिक आबादी में गिरावट के विभिन्न कारण है जैसे निवास स्थान का नुकसान, रासायनिक गहन कृषि, किन्तु जलवायु परिवर्तन को सबसे बड़ा कारण माना गया है। इस सदी के अंत तक एक अनुमानित तापमान वृद्धि 1.1.6.4 इंटरगवर्नमेंटल पैनल जलवायु परिवर्तन (आईपीसीसी) द्वारा रिपोर्ट की गयी है, जो की प्लांटपॉलिनेटर इंटरैक्शन के संबंध में एक चिंता का विषय है। जलवायु परिवर्तन के प्रमुख परिणामों में आईपीसीसी ने बर्फ और बर्फ के आवरण में कमी और बारिश की आवृत्ति एवं तीव्रता में अस्थिरता दर्शाई है। हालांकि, जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते हुए तापमान ने प्लांटपॉलिनेटर इंटरैक्शन के संबंध में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। जहाँ एक ओर कीट परागण कर्ताओं की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है वहीं दूसरी ओर, वे नकारात्मक रूप से प्रभावित भी होते हैं अन्य कारकों में से जलवायु परिवर्तन का प्रभाव आजकल एक प्रमुख मुद्दा है जो परागण करने वाले कीटों को नकारात्मक रूप से नुकसान पहुँचा रहा है।

जलवायु परिवर्तन और मधुमक्खियां

पांच प्रमुख वैश्विक परिवर्तन दबावों, जलवायु परिवर्तन, परिदृश्य परिवर्तन, कृषि गहनता, गैर–देशी प्रजातियां और रोगजनकों का प्रसार के परिणाम स्वरूप पोलिनेटर्स की संख्या में गिरावट आती है। जलवायु परिवर्तन मधुमक्खियों को अलग–अलग तरीके से प्रभावित कर सकता है। इसका उनके व्यवहार और शरीर क्रिया विज्ञान पर सीधा प्रभाव पड़

सकता है। अत्यधिक तापमान से परागण प्रक्रिया में मधुमक्खियों के व्यवहार की प्रतिक्रियाओं पर काफी दुषप्रभाव पड़ सकता है। तापमान में वृद्धि के कारण परागणकर्ता में ओवर हीटिंग का खतरा बना रहता है। जलवायु परिवर्तन से फूलों की प्रजातियां, जिस पर मधुमक्खियां भोजन के लिए

चित्रः 3 परागन करते हुए मधुमक्खी

निर्भर रहती हैं उनके वितरण में भी दुष्प्रभाव पड़ा है। मधुक्खियों की कॉलोनियों में सक्रिय गतिविधि और विकास फूलों के विकास, पराग उत्पादन और नेक्टर पर निर्भर करती है। अत्यधिक शुष्क जलवायु न केवल पराग उत्पादन को कम करती है अपितु इसकी पौष्टिक गुणवत्ता को भी प्रभावित करती है, जिसके परिणाम स्वरूप उस निवास स्थान की मधुमक्खियोंको भी प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए वसंत ऋतु में जब मौसम हल्का गर्म हो जाता है, तो रानी मधुमक्खी अंडे देना शुरू कर देती है और कॉलोनी विकसित हो जाती है और श्रमिक आबादी का आकार भी बढ़ जाता है किन्तु एक शीतलहर से मधुमक्खियां फोर्जिंग के लिए बाहर जाने में असमर्थ हो जाती है। जलवायु परिवर्तन के कारण मधुमक्खियों की प्रतिरक्षा प्रणाली जहां एक ओर उन्हें कमजोर कर रही है वहीं दूसरी ओर से उन्हें रोग जनकों के लिए अति संवेदनशील बना रही है जिससे उनका जीवन काल छोटा हो रहा है। मधुमक्खियां कई रोग जनकों पर जीवी और कुछ विशिष्ट शिकारी कीटों के लिए अति संवेदनशील होती हैं। इन परजीवी एवं रोगों के प्रसार में जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में मधुमक्खियों पर गहरा प्रभाव हो सकता है। प्रभावी फसल परागण, फसल और उसके परागण कर्ताओं के जैविक समय पर बहुत हद तक निर्भर है, फसलें जैसे आम, लीची, कॉफ़ी इत्यादि अपेक्षाकृत कम समय में बड़े पैमाने पर खिलती हैं और इस समय परागणकर्ताओं की आवश्यकता होती है, किन्तु समय पर मधुमक्खियों का वहाँ न होना पोल्लीनेशन प्रक्रिया पर प्रभाव डाल सकता है। जलवायु परिवर्तन इन घटनाओं के समय पर गहरा प्रभाव डालता है। उच्च वायुमंडलीय कार्बन का सीधा प्रभाव मधु और पौधे पर कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा पर प्रभाव डालता है किन्तु इसका अनुमान लगाना मुश्किल है। अप्रत्यक्ष रूप से उच्च वायुमंडलीय कार्बनडाइ ऑक्साइड पौधों के ऊतकों में कार्बन और नाइट्रोजन के अनुपात को संशोधित करती है जिससे संभवतः नेक्टर रचना में भी परिवर्तन आता है। इसके अलावा, वातावरण में बढ़ती कार्बनडाइ ऑक्साइड से C3 और C4 पौधों की संरचना में भी बदलाव संभव है।

निष्कर्षः–

मधुमक्खियों पर जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों का हल निकालने से पूर्व हमें इस परिवर्तन का मधुमक्खियों की गतिविधियों एवं फसलों के साथ उनकी परस्पर क्रिया के बारे में बारीकी के साथ अध्ययन करना होगा। हालांकि जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों के बारे में चर्चा की गयी है किन्तु इस विषय पर वैज्ञानिक साहित्य की कमी है जो वास्तव में ये बताता हो कि मित्र किट कैसे प्रभावित होते हैं। *एपिस मेलिफेरा* ने जलवायु परिवर्तन के अनुकूल अपनी आनुवंशिक परिवर्तनशीलता का उपयोग करते हुए अत्यधिक विविध जलवायु में भी विश्व के विभिन्न स्थानों पर अपनी जगह बनाई है, इसके विपरीत एशियाई प्रजाति सिर्फ एशिया तक ही सीमित है, जो उसके विभिन्न वातावरण में कम अनुकूलनशीलता का संकेत देती है। अभी हमें जलवायु परिवर्तन के तहत फसल परागण में बुनियादी पारिस्थितिकी पर हमारे ज्ञान को और अधिक बढ़ाने के लिए निरंतर अध्ययन की आवश्यकता है।

अखिल कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-05 जनवरी–जून, 2021

पॉपलर पत्ती बाइंडर *बोटीओडेस डिनियासलिस (लेपिडोप्टेराः पाइरालिडी)* कीट के जीवन चक्र का अध्ययन

अरविन्द कुमार एवं जितेंद्र कुमार
वन कीट विज्ञान शाखा, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सारः पॉपलर लीफ बाइंडर *बोटीओडेस डिनियासलिस* (*Botyodes diniasilis*) के जीवन चक्र का अध्ययन जुलाई से अगस्त के दौरान किया गया। मादा कीट पतंगा पत्ती के निचली सतह पर समूह में अपने अंडे देती है। अंडो से लार्वा 5 से 6 दिनों में बाहर निकलते हैं। इस कीट की एक मादा औसतन 250 से 300 अंडे देती है। लार्वा अवस्था पांच इंस्टार से गुजरती है और लार्वा की अवधि लगभग दो सप्ताह तक दर्ज की गई है। कीट का कुल अपरिपक्व अवस्था 26 से 27 दिनों में पुरी होती है। नवनिर्मित प्यूपा हल्के हरे रंग के होते हैं और बाद में लाल–भूरे रंग के हो जाते हैं जिसकी अवधि 7 से 9 दिनों की होती है। *बी. डिनियासलिस* का जीवन चक्र 27 से 32 दिनों में पूरा होता है।

मुख्य शब्द– जीवनचक्र, *बी. डिनियासालिस,* पत्ती फोल्डर, पॉपलर कीट

परिचयः भारत में पॉपलर एक प्रमुख कृषिवानिकी पेड़ की प्रजाति है। Poplar deltoides इसकी सबसे व्यापक रूप से लगाई जाने वाली प्रजाति है। इसे भारत में 1950 के दशक के अंत में आयात किया गया था। जिसे उत्तर पश्चिमी भारत के मैदानी इलाकों :– पश्चिमी उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तरांचल और हिमाचल प्रदेश के बाहरी मैदानी घाटियों में लगाया गया है। पॉपलर की लकड़ी प्लाई, ईंधन, माचिस की तीलियों, सजावटी समान, आदि बनाने वाले उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयोग होती है। यह किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति सुधारने और ग्रामीण आबादी के लिए रोजगार पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पॉपलर को उत्तर–पश्चिमी भारत में विभिन्न तरह के कीट क्षति पहुँचाते हैं। बड़े पैमाने पर लगाए गए पॉपलर के पेड़ों को कई कीटों से खतरा होता है जोकि पेड़ों की पैदावार एवं गुणवत्ता को कम करते हैं। पॉपलर में कीटों की कुल लगभग 143 प्रजातियां पेड़ों के विभिन्न भागों को क्षति पहुंचाते हैं। इन कीटों में प्ररोह और तना छेदक, निष्पत्रक, रस चूसने वाले, पत्ती फोल्डर, सूखे पेड़ों के कीटों और दीमक आदि सहित कीटों की सभी श्रेणियां शामिल हैं। इनमें से *बोटीओडेस डिनियासालिस* एक महत्वपूर्ण कीट है जोकि पत्तियों को आपस में जोड़कर अंदर ही अंदर पत्ती को खाता रहता है जिससे पत्तियाँ सूख जाती है। परंतु इस कीट के बारे में उपलब्ध जानकारी बहुत कम है इसलिए इसके विभिन्न पहलुओं की एक बेहतर समझ होना कीट के आक्रमण के खतरे को कम करने एवं प्रभावी प्रबंधन की रणनीति बनाने में सहायक हो सकती है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन किया गया है।

सामग्री और तरीके : *बोटीओडेस डिनियासालिस* के जीवन चक्र का अध्ययन वन कीट विज्ञान शाखा, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में जुलाई एवं अगस्त माह के दौरान किया गया। कीटों का संग्रह वन अनुसंधान संस्थान की पॉपलर पौधशाला से वयस्क और लार्वा को एकत्र करते हुए किया गया और इनका प्रयोगशाला में 27±2 डिग्री सेल्सियस तापमान 80 से 85% संबन्धित आद्रता और 10:14 LD पर पालन किया गया। कीट को प्लास्टिक के डिब्बों में पाला गया जिसे ऊपर से कपड़े से ढका गया। विकसित प्यूपा को नर एवं मादा के आधार पर वयस्क बनने के लिए अलग–अलग कंटेनर में स्थानांतरित कर दिया गया। वयस्क पतंगे निकालने के बाद नर और मादा की जोड़ी को मैथुन एवं अंडे देने के लिए अलग पिंजरे (40 40 40 सेमी) में रखा गया साथ ही पिंजरे में पोपलर की कोमल पत्तियाँ भी रखी गईं। पतंगों को खाने के लिए 10 प्रतिशत चीनी घोल में डूबी हुई रुई के टुकड़े को पिंजरे के अंदर लटका दिया गया एवं पिंजरे को मलमल के कपड़े से ढक दिया गया। पॉपलर की नरम पत्तियों पर नवजात कीट समूह को पाला गया और पहले तीन दिनों तक एक साथ खिलाया गया तथा बाद में लार्वा को प्यूपा अवस्था तक पेट्रीडिश में अलग–अलग पाला गया। कीट की विभिन्न अवस्था जैसे अंडों की अवधि, लार्वा अवधि, प्यूपा अवधि आदि अवस्थाओं को प्रतिदिन अध्ययन किया गया एवं दर्ज किया गया। वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के राष्ट्रीय वन कीट संग्रह से पतंगा की पहचान की पुष्टि की गई।

परिणाम और चर्चा : मादा पतंगा ने पत्ते की निचली और बाहरी सतह पर समूह में अंडे दिए (चित्र–1)। अंडे पारदर्शी, आकार में गोल और हल्के सफेद रंग के थे। मादा पतंगा कीट की अंडे देने की क्षमता पतंगा प्रति मादा औसतन 250

से 300 अंडे दर्ज की गई। अंडो में से लार्वा बनने की अवधि जुलाई से अगस्त के दौरान 5 से 6 दिन दर्ज की गई (तालिका 1)।

लार्वा अवस्था: नव निर्मित लार्वा पारदर्शी, हल्के क्रीम रंग के होते हैं और बाद में हल्के हरे पीले रंग में परिवर्तित हो जाते हैं लार्वा का सिर हल्के भूरे रंग का होता है। पहले इंस्टार लार्वा अंडो से निकलने के बाद मध्य रिब (mid rib) के साथ पत्तियों को खाते हैं। विकसित होने के बाद ज्यादातर लार्वा पत्ती के सीमांत किनारों को खाते हैं। लार्वा की अवधि लगभग दो सप्ताह दर्ज की गई।

प्यूपा अवस्था: नव विकसित प्यूपा हल्के हरे रंग के होते हैं और अंत में प्यूपा आकार में बेलनाकार, गहरे भूरे रंग के होते हैं जोकि पॉपलर के सूखे पत्ते के अंदर रेशमी जाल से ढके हुए होते हैं। प्यूपा अवस्था 7 से 9 दिन दर्ज की गई।

चित्र (1–5) : *बोटीओडेस डिनियासालिस* **कीट की विभिन्न अवस्थाएँ।**
1– अंडों का समूह 2–विकसित लार्वा अवस्था
3–4 प्युपा अवस्था 5– मादा वयस्क

वयस्क अवस्था: वयस्क मध्यम आकार के पीले रंग के होते हैं जिस पर भूरे रंग के धब्बे एवं धारियाँ होती हैं। पंख की निचली सतह सफेद होती है। वयस्क पतंगा के सिर पर हल्के–पीले रंग के छोटे–छोटे बाल और पेट के पृष्ठीय पक्ष में सफेद धारियों का आवरण होता है। कीट की लंबाई 12 से 14 मिमी तथा पंखों का फैलाव लगभग 25 से 30 मिमी होता है पिछले पंख की किनारी पर लम्बे फ्रिंजबाल होते हैं। वयस्क पतंगा प्रयोगशाला में 3 से 4 दिनों तक जीवित रहे। कीट का जीवन चक्र अवधि 27 से 32 दिन दर्ज की गई।

नुकसान की प्रकृति: पहले इंस्टार के लार्वा अंडो में से बाहर निकलने के बाद समूह में रहते हैं तथा पत्तियों को झुंड में खाते हैं। विकसित इंस्टार लार्वा पत्तियों को रेशमी पदार्थ से किनारों को चिपका देते हैं एवं सीमांत किनारों को खाते है। बाद के इंस्टरों द्वारा पत्तियों की मुख्य नसों को छोड़कर पत्तियों के सभी भाग को खा लिया जाता है। लार्वा की भोजन अवधि लगभग 2 सप्ताह तक दर्ज की गई।

तालिका 1: बी. *डिनियासलिस* के जीवन चक्र चरणों की अवधि।

क्रमांक	जीवन चक्र अवस्था	अवधि (दिन)
1.	अंडा अवधि	5 से 6 दिन
2.	लार्वा अवस्था	10 से 13 दिन
3.	प्युपा अवस्था	7 से 9 दिन
4.	कुल अपरिपक्व अवस्था	26 से 27 दिन
5.	वयस्क अवस्था	3 से 4 दिन
6.	प्रति मादा अंडे देने की क्षमता	250 से 300 दिन

निष्कर्ष : *बी. डिनियासलिस* के जीवन चक्र चरणों की अवधि तालिका 1 में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि इस कीट की मादा 250 से 300 तक अंडे दे सकती है जोकि काफी अत्यधिक है एवं यह कीट पोपलर की पत्तियों को अधिक नुकसान पहुँचाने का सामर्थ रखता है। मादा कीट द्वारा पत्तियों पर समूह में अंडा दिया जाता है जिसे मादा कीट एक चिपचिपे पदार्थ से ढक देती है। इस अवस्था को आसानी से पहचाना जा सकता है और कीट नियंत्रण के लिए इसे आसानी से एकत्र कर नष्ट किया जा सकता है। इस कीट की प्रारम्भिक लार्वा अवस्था पत्तियों पर समूह में रहते हैं । अंडा, लार्वा और प्यूपा अवधि का योग कुल अपरिपक्व अवधि देता है जो कि 26 से 27 दिन दर्ज किया गया। पॉपलर जैसी व्यावसायिक फसल को होने वाले नुकसान के कारण इस कीट के जीवन, इतिहास एवं लक्षणों का अध्ययन करना आवश्यक था। यह अध्ययन कीट विज्ञान को समझने में फायदेमंद एवं कीट प्रबंधन प्रयासों के लिए उपयोगी होगा।

अरविन्द कुमार,
वैज्ञानिक–ई

जैविक नियंत्रण एजेंट

अतिराज राठी, परियोजना सहायक एवं डॉ. संगीता सिंह, वैज्ञानिक–ई
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

जैविक नियंत्रण या बायोकन्ट्रोल अन्य जीवों का उपयोग करके कीटों, कण, खरपतवार और पौधों की बीमारियों जैसे कीटों को नियंत्रित करने की एक विधि है। कीटों के प्राकृतिक दुश्मन, जिन्हें जैविक नियंत्रण एजेंटों के रूप में भी जाना जाता है, में शिकारियों, पैरासाइटोइड्स, रोगजनकों और प्रतियोगियों में शामिल किया जाता हैं।

प्रतिपक्षी सूक्ष्मजीवों के माध्यम से पौधे के रोगजनकों और उनके कारण होने वाले रोगों का नियंत्रण जैविक नियंत्रण एजेंट कहलाता है। *ट्राइकोडर्मा, पेनिसिलियम, बैसिलस, स्यूडोमोनास* जैसी प्रजातियों के विरोधी सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जाता है।

जैव–नियंत्रण को केवल दूसरे को नियंत्रित करने के लिए एक जीवित जीव के अनुप्रयोग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

कृषि प्रदूषण के अत्यधिक उपयोग और दुरुपयोग के कारण पर्यावरण प्रदूषण, कृषि में कीटनाशकों के उपयोग के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में काफी बदलाव आया है। इसलिए वर्तमान परिदृश्य में पर्यावरणीय प्रभावों के साथ कीटों और बीमारियों के प्रभाव को कम करने में जैविक नियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इतिहासः "बायोलॉजिकल कंट्रोल" शब्द का इस्तेमाल पहली बार हैरी स्कॉट स्मिथ ने 1919 में रिवरसाइड, कैलिफ़ोर्निया में अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ इकोनॉमिक एंटोमोलॉजिस्ट की पैसिफिक स्लोप ब्रांच में किया था।

1873 में U.S. में जैविक नियंत्रण एजेंट के रूप में एक कीट का पहला अंतर्राष्ट्रीय शिपमेंट चार्ल्सवी रिले द्वारा बनाया गया था, फ्रांस में अंगूर के फाइटोक्लेरा (*डैक्युलोस्पैरा विटिफोलिया*) से लड़ने में मदद करने के लिए शिकारी *माइट्स टायरोग्लाइफस फिलाक्लेरा* को फ्रांस में भेजा गया था जो फ्रांस में अंगूर को नष्ट कर रहा था।

बायोकंट्रोल एजेंट के प्रकारः

परजीवी : एक जीव जो अपने विकास के दौरान या एकल मे जबान व्यक्तियों के शरीर में रहता है, अंततः उस मेजबान को पर जीवीवाद की प्रक्रिया में मार देता है।

शिकारी : वे अपने विकास के दौरान कई शिकार करते हैं, वे स्वतंत्र रहते हैं, और वे आमतौर पर अपने शिकार आकार में बड़े होते हैं। कुछ शिकारियों, जिनमें कुछ सिरिफिड फ्लाई और सामान्य ग्रीन लेसविंग शामिल हैं, केवल लार्वा के रूप में पूर्ववर्ती हैं। अन्य शिकारियों को विभिन्न फसल प्रणाली में क्षेत्र में पाया जाता है, लेडी बीटल, रोवे बीटल, डैमेल फ्लाई, ड्रैगन फ्लाई, मिरिड बग, ग्राउंड बीटल, और शिकार करने वाले मेंटिस, *कॉनबोर्था एफिविवोरा*, मकड़ियां आदि।

बैक्टीरिया : जैविक नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाने वाले कीड़े अपने पाचन तंत्र के माध्यम से संक्रमित करते हैं, इसलिए वे मुंह के अंगों जैसे कि एफिड्स और स्केल कीड़े के साथ कीड़े को नियंत्रित करने के लिए केवल सीमित विकल्प प्रदान करते हैं। उदाहरणः *बेसिलस थुरिंजेंसिस* जैविक नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाने वाले जीवाणुओं की सबसे व्यापक रूप से लागू प्रजाति है और इसका इस्तेमाल *लेपिडोप्टेरा, कोलेप्टोरा, डिप्टेरा* के खिलाफ किया जा सकता है।

वायरस : रोग पैदा करने वाले जीव हैं जो एक मेजबान कीट के भीतर प्रजनन कर सकते हैं। वे विभिन्न प्रकार के कीटों के सुरक्षित, प्रभावी और स्थायी नियंत्रण प्रदान कर सकते हैं जो आमतौर पर *लेपिडोप्टेरा* या *हाइमेनोप्टेरा* के लार्वा पर हमला करते हैं। विषाणु विशिष्ट होते हैं। विषाणु से प्रेरित मृत्यु दर विषाक्त प्रोटीन के कारण होती है जो कीटों की मृत्यु के बाद विषाणु के प्रजनन चक्र के दौरान जमा हो जाती है।

कवक : विभिन्न प्रकार के कीटों से फसलों की रक्षा के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है। वे कीट मेजबानों की एक विस्तृत श्रृंखला को संक्रमित कर सकते हैं। फंगी में केवल जैविक नियंत्रण एजेंट के रूप में सीमित सफलता मिली है क्योंकि फंगी अपने मेजबान को मारने के लिए धीमा है।

जैविक नियंत्रण के लाभ और नुकसानः

लाभः प्रभावी लागत। रसायनों और अन्य कीटनाशकों के उपयोग को कम करता है। ये पर्यावरण के अनुकूल हैं और कोई दुष्प्रभाव नहीं है। सभी मौसमों में प्रभावी, उपयोग में आसान और आसानी से उपलब्ध है। यह नई कीट समस्याओं को पैदा नहीं करता है।

नुकसानः यह उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। यह केवल बड़े पैमाने पर प्रभावी है। गैर–लक्ष्य सूक्ष्म जीवों पर घातक प्रभाव, रोगजनकों का बायोकन्ट्रोल एजेंट के लिए प्रतिरोध विकसित हो सकता है।

अतिराज राठी
परियोजना सहायक

वन अनुसंधान ई-पत्रिका
अंक-05
जनवरी–जून, 2021

धार्मिक एवं औषधीय फल वृक्ष–बेल

डॉ. नवीन कुमार बौहरा, वैज्ञानिक–सी
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

बिल्व, बेल या बेलपत्र भारत में होने वाला एक फल वृक्ष है। इसे वानस्पतिक भाषा में *ईगल मारमिलोस* एवं अंग्रेजी में वुड एप्पल (Wood Apple) कहते है। इसे शाण्डिलू (पीड़ा निवारक), श्रीफल, सदाफल आदि कहते है। ये मुख्यतः उत्तरी भागों में तथा हिमालय की तराई, सुखे पहाड़ी क्षेत्रों में लगभग 4000 फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इसके वृक्ष भारत के अलावा दक्षिणी नेपाल, श्रीलंका, म्यांमार, पाकिस्तान, बांग्लादेश, वियतनाम, लाओस, कंबोडिया, थाइलैण्ड आदि में पाए जाते हैं।

चित्रः02 बेल का पेड़

यह शुष्क जलवायु के लिए अधिक उपयुक्त रहता है। यह 5–7 बेल का तापमान सहन कर सकता है। अच्छी पैदावर के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। बंजर एवं ऊसर भूमि जिसका पी.एच. 8 से 8.5 तक हो वहाँ बेल की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण इसे मन्दिरों के पास लगाया जाता है। हिन्दू धर्म में इसे भगवान शिव का रूप ही माना जाता है तथा मान्यता है कि इसके मूल (जड़) में भगवान शिव का वास होता है। इनके तीन पत्तों को जो एक साथ होते है उन्हें त्रिदेव का स्वरूप मानते है।

चित्रः 01 बेल का फल

खेतीः– बेल का प्रवर्धन मुख्यतः बीजों या प्रवर्धन विधि से उगाया जा सकता है। जड़ से निकले पौधों को मूल तने से इस प्रकार अलग कर लेते है कि कुछ हिस्सा पौधे के साथ निकल सके। अब इन पौधों को बसन्त में लगाने से भी सफलता मिलती है। मई–जून माह में पके फलों से बीजों को निकालकर तुरन्त नर्सरी में बुवाई कर देते है। जब पौधा 20 सेन्टीमीटर का हो जाए तो उसे दूसरी क्यारिओं में 30 सेमी दूरी पर बदल देना चाहिए।

बेल को चश्मा बाँधने की विधि से भी उगाया जा सकता है। चश्मा दो वर्ष के पश्चात् पौधों पर बाँधा जाता है। मई से जुलाई तक चश्मा बाँधने से अधिक सफलता प्राप्त होती है। चश्मा बाँधने के लिए उस पेड़ की जिसकी कलम लेना चाहते है, स्वस्थ तथा कांटो से रहित अधपकी टहनी से आँख का चुनाव करना चाहिए। टहनी से 2–3 से.मी. के आकार का छिलका आँख के साथ निकालकर, दो वर्ष पुराने बीजू पौधे के तने पर 10–12 से.मी. ऊँचाई पर भी इसी प्रकार हटाये छिलके के खाली स्थान पर बैठा देना चाहिए। फिर इस पर पालीथीन की 1 से.मी. चौड़ी एवं 20 से.मी. लम्बी पट्टी से कसकर बाँध देते है। 15 दिन बाद बंधे हुए चश्मों के 8 से.मी. ऊपर से बीजू पौधे के शीर्ष भाग को काटकर अलग कर देते है। इससे आँख से शीघ्र निकलती है। चश्मा बाँधने के बाद क्यारियों को सदैव नमी से तर रखना चाहिए जब तक कली 12–15 से.मी. की न हो जाए।

रोपणः– बेल के पौधों का रोपण वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में 8 मीटर की परस्पर दूरी पर गढ्ढा खोदकर करना चाहिए। बूंद–बूंद सिंचाई में 5–7 मीटर पर भी पौधे रोपित कर सकते है। इन गढ्ढों में खाद, दीमकनाशी आदि डालने से अच्छा रहता है। सामान्यतः 5 वर्ष के फलदार एवं 400 ग्राम पोटाश डालना उपयुक्त रहता है। खाद को जुलाई–अगस्त एवं जनवरी–फरवरी माह में अर्थात वर्ष में दो बार डालना चाहिए। बेल में फूल जून–जुलाई में आते है।

किस्में:– इसकी खेती हेतु नरेन्द्र बेल 5 एवं नरेन्द्र बेल–9 उपयुक्त रहती है। नरेन्द्र बेल 5 में पौधे मध्यम ऊँचाई के होते है तथा फल 4–5 वर्ष में आने लगते है। इसके 7 वर्ष के वृक्ष पर 35–40 फल (लगभग 1.5 से 2 किलोग्राम तक के) आते है अर्थात् उत्पादन 50–60 किलोग्राम प्रतिवृक्ष तक होता है। नरेन्द्र बेल 9 में पौधे कम ऊँचाई के होते है तथा फल 25–30 संख्या में अर्थात् 7 वर्ष के पादप का उत्पादन 45–50 किलोग्राम/वृक्ष तक होता है।

फल उत्पादन–बीज से तैयार पौधों में रोपण के 7–8 वर्ष बाद फल लगते है परन्तु चश्मे से तैयार पौधों में 4–5 वर्ष बाद ही फल आने लगते है। बेल का पेड़ लगभग 15 वर्ष में पूर्णतः फलन स्थिति में आता है।

रोगः– बेल में नींबू प्रजाति के कीट एवं व्याधि लगते है जिनको उपयुक्त कीटनाशी से उपचारित कर सकते है। इसके अतिरिक्त इसमें जस्ते की कमी होने पर जिंक सल्फेट (0.5 प्रतिशत) का छिड़काव जुलाई, अक्तूबर एवं दिसम्बर में करना चाहिए।

इसके फल में विभिन्न प्रकार के ऐन्केलोइड, सेपोनिन्स, फ्लेवोनोइड्स, फिनाल्स एवं अन्य रसायन पाये जाते है। इसके फल के गूदे में प्रोटीन फाइबर, विटामिन एवं खनिज के साथ एन्टी–ऑक्सीडेन्ट पाए जाते है। बेल का फल विभिन्न प्रकार के रोगों की रोकथाम में एवं उत्तम स्वास्थ्य हेतु औषधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने बेल को वातशामक माना है तथा बंगसने एवं भाव प्रकाश में इसे आंतो के रोगों में लाभकारी पाया गया है। यह आंतो की कार्यक्षमता बढ़ाता है। इससे भूख बढ़ती है एवं इन्द्रियों को बल मिलता है। बेल के फल का गूदा डिटर्जेन्ट का काम करता है जो कपड़े धोने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसे चूने के प्लास्टर के साथ मिलाकर स्थानीय रूप में जल अवरोधक का काम करता है। वस्तुतः बेल शीतल एवं स्वास्थ्यवर्धक पादप है।

डॉ. नवीन कुमार बौहरा
वैज्ञानिक–सी

गंगा का महत्व और गंगा–तंत्र संरक्षण में उपलब्धियाँ

डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल, वैज्ञानिक–ई, रेणुका व्यास, कनिष्ठ परियोजना अध्येता
विकेश व्यास, क्षेत्र सहायक, सोनी सिंह, कनिष्ठ परियोजना अध्येता एवं हिमानी नेगी, पी.एच.डी. शोधार्थी
वन पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्राचीन काल से ही नदियाँ मानव सभ्यता का एक अभिन्न हिस्सा रही है। मीठे पानी के प्रमुख स्रोत के कारण नदियों को हमेशा प्रकृति की संपत्ति माना गया है। भौगोलिक सन्दर्भ में भारत में जल स्रोतों एवं नदियों का मुख्य स्थान है। प्राकृतिक संपदा से सम्पन्न भारत की सभी नदियां पर्यावरण में उपस्थित जीव जन्तुओं एवं मानवीय आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। नदियों के ऐसे विशाल महत्व के बारे में जानकर हमारे पूर्वजों ने नदियों को पूजनीय और सम्मानीय माना है।

पर्वतराज हिमालय भारत की तीन प्रमुख नदियों गंगा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थल है। इसमें गंगा ऐसे दुर्गम पहाड़ों व मैदानी क्षेत्रों में प्रवाहित होती है जो अपनी ऊँचाई, जलवायु, भूमि, प्राणि–वनस्पतियों एवं सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन की विविधता के लिए जानी जाती है। गंगा, हजारों वर्षों से मानव सभ्यता की जननी है। और आज भी करोड़ों लोग गंगा नदी पर भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से आश्रित हैं। यह विश्व की प्राचीनतम नदियों में से एक है जिसके प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा बनी हुई है।

गंगा घाटी आवास क्षेत्र के सन्दर्भ में भारत में सर्वाधिक विशालतम नदी घाटी है। यह भारत के कुल भू–भाग का 26 प्रतिशत (8,61,404 वर्ग किमी.) है तथा देश की लगभग 43 प्रतिशत जनसंख्या (2001 की जनगणना के अनुसार 4480. 3 मिलियन) को सहायता प्रदान करती है। यह घाटी 73002' और 89005' पूर्वी देशान्तर रेखांश से 21006' और 31021' उत्तरी अक्षांश के बीच फैली हुई है तथा समूचे भारत, नेपाल और बांग्लादेश में फैले लगभग 10,86,000 वर्ग किमी. क्षेत्र आच्छादित है। भारत के 11 राज्य अर्थात् उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार, प. बंगाल और दिल्ली इस घाटी से आच्छादित हैं। इस घाटी में वर्षा वार्षिक औसत 30 सेमी. से 200 सेमी. के बीच तथा इसका कुल औसत 110 सेमी. है। जिसमें से 80 प्रतिशत वर्षा मानसून के महीनों में होती है।

गंगा की उद्गम धारा, भागीरथी 3,829 मी. (12,770 फुट) की ऊँचाई पर स्थित गोमुख से उत्पन्न होती है। अलकनंदा, धौलीगंगा, पिंडर, मंदाकिनी, नंदाकिनी और भिलंगना जैसी महत्वपूर्ण धराएं गंगा के मुख्य जल का स्रोत बनती हैं। भागीरथी अलकनंदा से मिलकर देवप्रयाग में गंगा का नाम धारण कर लेती है। गंगा नदी 2525 किमी. का मार्ग तय करते हुए अंततः बंगाल की खाड़ी में समाहित हो जाती है।

उत्तराखण्ड में टिहरी के निकट भागीरथी पर जल विद्युत सृजन के लिए एक बांध का निमार्ण किया गया है। जिसके फलस्वरूप शुष्क माहों के दौरान अतिरिक्त जल को बेहतर रूप से विनियमित किया जाता है। हरिद्वार में गंगा मैदानों की ओर बहती है जहां एक बैराज इसके जल की बड़ी मात्रा को ऊपरी गंगा नहर में प्रवाहित होते हुए सिंचाई के लिए पानी प्रदान करता है। बिजनौर में एक अन्य बैराज मानसून के माहों के दौरान इसके जल को मध्य गंगा नहर में प्रवाहित करता है। इसके बाद नरोरा में जल को निम्न गंगा नहर में पुनः प्रवाहित किया जाता है, आगे चलकर कन्नौज के निकट रामगंगा नदी गंगा नदी से मिलती है। इलाहाबाद में संगम पर यमुना गंगा से मिलते हुए नदी के प्रवाह में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। उत्तर भारत तथा दक्षिण की ओर से आती हुई अनेक सहायक नदियां गंगा में मिल जाती हैं। इस प्रकार उत्तर भारत में इलाहाबाद तथा पश्चिम बंगाल में मालदा के बीच के भू–भाग में गंगा का प्रवाह अत्याधिक तीव्र हो जाता है। पश्चिम बंगाल मे फर्राक्का बैराज नदी के प्रवाह को विनियमित करता है तथा कुछ जल को हुगली से जोड़ने वाली शाखापथ नहर में प्रवाहित कर देता है जिससे यह जल सापेक्षी रूप से गादमुक्त रहता है। गंगा नदी दाहिने भाग पर हुगली तथा बायें भाग पर पद्मा के रूप में दो नदियों में विभाजित हो जाती है। पद्मा बांग्लादेश में प्रवेश करते हुए ब्रह्मपुत्र तथा मेघना जैसी मुख्य नदियों से मिलकर अंततः बंगाल की खाड़ी में समाहित हो जाती है।

गंगा का महत्व

गंगा बेसिन भारत का सबसे बड़ा नदी बेसिन है, जो

भारत की सांस्कृतिक और भौगोलिक विविधता को दर्शाता है। पूर्णस्वरूप में गंगा बेसिन में वर्षा आधारित कृषि सबसे व्यापक भूमि उपयोग है, जो बेसिन के 52 प्रतिशत को आच्छादित करती है। इसके पानी का उपयोग भी अधिक होता है, यानी कुल इस्तेमाल किए गए पानी का 32 प्रतिशत है। वर्ष 2018–2019 के अनुसार जीडीपी का लगभग 40 प्रतिशत भाग (मौजूदा कीमतों पर) गंगा नदी बेसिन पर निर्भर था।

जीव–जन्तु

गंगा नदी बहुत से महत्वपूर्ण जलीय जन्तुओं जैसे कि डॉल्फिन की दो प्रजातियाँ – गंगा डॉल्फिन और इरावदी डॉल्फिन, घड़ियाल, कछुएँ, ऊद्बिलाव तथा बहुत से जलीय और स्थलीय पक्षियों को आश्रय प्रदान करती है। गंगा में पाये जाने वाले शार्क की वजह से भी गंगा की प्रसिद्धि है। गंगा में पाए जाने वाले विशेष प्रजाति के कछुए, मगरमछ व मछलियां गंगा की गंदगी को साफ करने में अपना योगदान देती है। इसमें मछलियों की 140 प्रजातियाँ, 35 सरीसृप तथा इसके तट पर 42 स्तनधारी प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इस नदी और बंगाल की खाड़ी के मिलन स्थल पर बनने वाले मुहाने को सुन्दरवन के नाम से जाना जाता है जो विश्व की बहुत–सी प्रसिद्ध वनस्पतियों और प्रसिद्ध बंगाल बाघ का गृह क्षेत्र है।

कृषि एवं सिंचाई

गंगा अपनी सहायक नदियों के साथ बहुत बड़े क्षेत्र के लिए बारामासी स्रोत है जो कि भारत व बांग्लादेश के कृषि आधारित अर्थ का आधार है। इन क्षेत्रों में उगाई जाने वाली प्रधान उपज में मुख्यतः धान, गेंहू गन्ना, तिलहन, दाल एवं आलू हैं। गंगा के तटीय क्षेत्रों में दलदल तथा झीलों के कारण यहां लेंग्यूम, मिर्च, सरसों, तिल, गन्ना और जूट की बहुतायत फसल होती है।

बढ़ता प्रदूषण– प्रमुख चिन्ता का विषय

गंगा नदी की शुद्धिकरण क्षमता से हर कोई भली–भाँति अवगत है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस नदी के जल में बैक्टीरियोफेज नामक विषाणु होते है, जो जीवाणुओं और हानिकारक सूक्ष्मजीवों को जीवित नहीं रहने देते है। गंगा जल में ऑक्सीजन की मात्रा को बनाये रखने की असाधारण क्षमता है। लेकिन गंगा तट पर बसे औद्योगिक नगरों, कारखानों की गंदगी सीधे गंगा नदी में मिलने से प्रदूषण पिछले कई सालों से भारत सरकार और जनता के लिए चिन्ता का विषय बन चुका है। वैज्ञानिक जाँच के अनुसार गंगा का बायोलॉजिकल ऑक्सीजन स्तर 3 डिग्री से बढ़कर 6 डिग्री हो चुका है। गंगा में 2 करोड़ 10 लाख लीटर प्रदूषित कचरा प्रतिदिन गिर रहा है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार पाया गया है कि गंगा के जल में कुछ विषैले तत्व जैसे क्रोमियम, फ्लोराइड, आर्सेनिक बहुताय मात्रा में मिलने लगे है। जिसके फलस्वरूप गंगा नदी का पानी प्रदूषित होता जा रहा है। बढ़ते प्रदूषण का गंगा नदी में रहने वाले जीव जन्तुओं पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। एन.एम.सी.जी. 2020 की रिपोर्ट के अनुसार 41 प्रतिशत से ज्यादा उभयचर, 31 प्रतिशत कोरल तथा 33 प्रतिशत मछलियों की जीव जातियां अब विलुप्त हो चुकी हैं।

सरकारी एवं गैर–सरकारी पहल

नमामि गंगे परियोजना (अवधि 5 साल)– देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा मई 2015 में एक व्यापक नदी वेसिन दृष्टिकोण अपनाकर बढ़ते प्रदूषण को कम करने और गंगा नदी के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए एक एकत्रित कार्यक्रम की शुरूआत की गई है। इस परियोजना को सफल बनाने हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

1. प्रदूषण को प्रभावी अनुमूलन

2. राष्ट्रीय नदी गंगा और उसकी सहायक नदियों का संरक्षण और कायाकल्प

परियोजना की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं–

1. गंगा नदी के कायाकल्प के लिए टिकाऊ और पर्यावरणीय कृषि– उत्तर प्रदेश के 10 जिलों में औषधीय वृक्षारोपण के लिए एकीकृत परियोजनाएं चलायी गयी हैं। साथ–साथ गंगा के किनारों पर कई सारे औषधीय पौधों का रोपण किया गया है। गंगा के दोनों किनारों पर 5 किमी. की दूरी पर जैविक कृषि कार्यक्रम किये जा चुके हैं। राज्य में कला और सांस्कृतिक विरासत के लिए भारतीय राष्ट्रीय न्यास के साथ मिलकर रूद्राक्ष का वृक्षारोपण किया गया है।

2. वनीकरण– प्राकृतिक, शहरी और कृषि नदियों के लिए वन अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा गंगा के

तटीय क्षेत्रो में वनीकरण की योजना भी बनाई गई है।

3. जैव विविधता: देशी मछली प्रजातियों का अनुसंधान और संवर्धन किया गया तथा केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्सिकी अनुसंधान संस्थान के साथ नदी में उनके प्रवास में सुधार किए जा रहे है। भारतीय वन्य जीव संस्थान के द्वारा सामुदायिक भागीदारी के साथ वैज्ञानिकी आवास और प्रजातियों का संरक्षण किया गया है।

उपलब्धियाँ:

1. 2019 में किये गए गंगा नदी के जल गुणवत्ता आंकलन में पाया गया कि 2014 की तुलना 2019 में गंगा नदी के जल गुणवत्ता मूल्यांकन में सुधार है।

2. बहुत से स्थानों में जैविक ऑक्सीजन मांग स्तर, घुलित ऑक्सीजन स्तर तथा फीकल कॉलिफॉर्म की मात्रा में सुधार पाया गया है।

3. पिछले 3 वर्षों में 379 एमएलडी की नई सीवेज उपचार क्षमता हासिल की गई है, जिसमें पिछले एक वर्ष के दौरान 169 एमएलडी हासिल की गई है।

4. 2014–2020 के दौरान बायो मोनिटिरिंग– जून 2020 एनएमसीजी रिपोर्ट के अनुसार 41 में से 29 स्थानों पर मध्यम से उच्च क्लास में जैविक जल की गुणवत्ता में सुधार पाया गया है।

कई सरकारी और स्वैच्छिक ऐजेंसियां देश की सबसे प्रसिद्ध नदी की सफाई के महत्वपूर्ण कार्य मे शामिल है। केन्द्र सरकार ने नदी को साफ करने के लिए एक सम्पूर्ण संरचना बनाई है, लेकिन कुछ गैर सरकारी संगठन भी लोगों को जागरूक करने और आधिकारिक सफाई के उपायों का विश्लेषण करने के लिए सक्रिय है।

वाराणसी में, संकट मोचन फॉउन्डेशन (गैर सरकारी संगठन) ने बड़े पैमाने पर जागरूकता पैदा करने में अग्रणी काम किया है। इसके सदस्यों में बड़ी संख्या में वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से है। हाल ही में, फॉउन्डेशन ने वाराणसी में नदी के पानी की गुणवत्ता की नियमित निगरानी के लिए अपनी प्रयोगशाला स्थापित की है। गंगा के किनारे बसे लोगों के बीच, विशेष रूप से जल–जनित और स्नान करने वाले लोगों की निगरानी के लिए कलकत्ता स्थित अखिल भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता आयोग की स्थापना की गयी। इसके लिए, संस्थान के द्वारा दो जनसंख्या समूहों की बीमारी के स्तर पर ध्यान केन्द्रित किया गया है– जो नदी के किनारो पर रह रहे हैं और उन लोगों का एक नियंत्रित समूह है जो गंगा के पानी के गहन संर्पक में है।

डॉ. जी.डी. अग्रवाल (टीबीएस के उपाध्यक्ष) के नेतृत्व में तरूण भारत संघ (गैर सरकारी संगठन) ने उत्तराखण्ड में भागीरथी नदी के अप्रभावित प्रवाह को बनाए रखने के लिए देशव्यापी अभियान चलाया। डॉ. जी.डी. अग्रवाल ने दो बार बिजली परियोजनाओं के लिए नदी को बांधने की सरकारी नीतियों के विरोध के लिए दो बार आमरण अनशन किया। आमरण अनशन के लिए राष्ट्रीय जल बिरादरी ने धार्मिक नेताओं, पर्यावरणविदों, मीडिया व्यक्तियों, राजनीतिक दलों, इंजीनियरों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि को गंगा नदी के प्रदूषण और अतिक्रमण मुक्त प्रवाह के महत्व पर प्रकाश डाला। अभियान ने भारत सरकार को (फरवरी 2009) गंगा नदी को राष्ट्रीय नदी के रूप में नामित करने और राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण (एनजीबीआरए) को एक सशक्त योजना, वित पोषण निगरानी और पर्यावरण के तहत गंगा के लिए सह–समन्वय प्राधिकरण के रूप में अधिसूचित करने के लिए प्रभावित किया।

समय की मांग:

वर्षों से चले आ रहे सरकारी एवं गैर–सरकारी प्रयासों के बावजूद गंगा को प्रदूषण मुक्त नहीं बनाया जा सका है। इन प्रयासों को पूरी तरह से सफल बनाने के लिए सुनियोजित एवं व्यवस्थित उपायों की आवश्यकता है। सर्वप्रथम समस्या की जड़ को समझना तत्पश्चात उसके लिए सबसे उचित उपायों का चुनाव करना ही वांछनीय परिणाम हासिल करने की एक मात्र सहज रीति है। कुछ अत्यन्त आवश्यक समस्याओं के निवारण के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाया जाना चाहिए–

1. औद्योगिक क्षेत्र एवं आवासीय क्षेत्र को अलग–अलग सीवर लाईनों से जोड़ना तथा इन भिन्न प्रकार के सीवर को अलग तरीकों एवं तकनीकों से अपघटन करना।

2. खेतों में धीरे–धीरे रासायनिक खादों का उपयोग घटाकर जैव–आधारित उर्वरकों के प्रयोग पर जोर देना।

3. नदियों में प्राकृतिक रूप से जलीय जीवों का सन्तुलन बनाना जिससे कि पारिस्थितिकी के अनुसार प्राकृतिक सन्तुलन कायम रह सके।

4. नदी प्रवाह के क्षेत्र में स्थानीय रूप से उचित पाये गये प्राकृतिक वृक्षों व वनस्पतियों का वृक्षारोपण एवं संरक्षण करना। वर्तमान, समय को ध्यान में रखते हुए गंगा नदी के संरक्षण में सरकार द्वारा कड़े नियम कानून समय–समय पर लागू किये जाने तथा नियमों का उल्लंघन करने पर कार्यवाही की आवश्यकता है। साथ ही गंगा नदी को स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को जागरूक तथा बढ़–चढ़कर योगदान देने की आवश्यकता है। समग्र प्रयास से ही गंगा को प्रदूषण मुक्त बनाने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। धार्मिक आस्था पर नियंत्रण के साथ सत्कर्म की महत्ता पर जोर दिये जाने की आवश्यकता है। साथ ही साथ जैवविविधता और हमारे अस्तित्व के बीच संबंध के बारे में बेहतर समझ और जागरूकता पैदा करने के लिए हमें अपने कायाकल्प का समर्थन करते हुए सामुहिक प्रयास की आवश्यकता है। गंगा नदी को अपनी धरोहर मानते हुए इसे संरक्षित करना ही हमारा मूल मंत्र होना चाहिए। तभी सही मायनों में गंगा नदी को माँ का दर्जा प्राप्त होगा।

डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल
वैज्ञानिक–ई

पादप ऊतक संवर्धन : अनेक समस्याओं का एकल समाधान

डॉ. पूजा शर्मा, वैज्ञानिक–बी
अनुवांशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग, शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पादप ऊतक संवर्धन कोशिकाओं, ऊतकों, अंगों या पूरे पौधे का नियंत्रित पोषण और पर्यावरणीय परिस्थितियों में संवर्धन है। जिसमें वृद्धि और गुणन के लिए नियंत्रित परिस्थितियों के लिए पोषक तत्वों की उचित आपूर्ति, पीएच माध्यम, पर्याप्त तापमान और उचित गैसीय और तरल वातावरण की आवश्यकता होती है। सरल तरीके से, यदि पूरे पौधे का एक हिस्सा एक छोटे से हिस्से में विच्छेदित हो जाता है जिसे एक्सप्लांट कहा जाता है और जिसे एक पूर्ण पौधे में उगाया जा सकता है। पूरे पौधे को विकसित करने के लिए ग्रोथ मीडिया का उपयोग करके पौधे के किसी भी हिस्से को एक एक्सप्लांट के रूप में विकसित किया जा सकता है।

पादप ऊतक संवर्धन के माध्यम में पौधों की सामान्य वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व होते हैं। इसमें मुख्य रूप से मैक्रोन्यूट्रिएंट्स, माइक्रोन्यूट्रिएंट्स, विटामिन्स, अन्य ऑर्गेनिक कंपोनेंट्स, प्लांट ग्रोथ रेगुलेटर्स, कार्बन कंटेंट शामिल हैं। मुराशिगे और स्कोग माध्यम (एमएस माध्यम) का सबसे व्यापक रूप से इनविट्रो में कई पौधों की प्रजातियों के वानस्पतिक प्रसार के लिए उपयोग किया जाता है। मीडिया का पीएच भी महत्वपूर्ण है जो पौधों की वृद्धि और पौधों के विकास नियामों की गतिविधि दोनों को प्रभावित करता है और इसे 5.4–5.8 के बीच के मान में समायोजित किया जाता है। संवर्धन के लिए ठोस और तरल दोनों माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है। माध्यम की संरचनाएँ विशेष रूप से पौधे के हार्मोन और नाईट्रोजन स्रोत खोजकर्ता की प्रारंभिक वृद्धि की प्रतिक्रिया पर प्रमुख प्रभाव डालते हैं। पादप वृद्धि नियामक (PGR"s) संवर्धन माध्यम में पादप कोशिकाओं और ऊतकों के विकास पथ का निर्धारण करने में एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं। ऑक्सिन, साइटोकिनिन और जिबरेलिन सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले पौधे विकास नियामक हैं। उपयोग किए जाने वाले हार्मोन का प्रकार और मात्रा मुख्य रूप से पौधे की प्रजातियों, ऊतक या अंग और प्रयोग के उद्देश्य पर निर्भर करती है। पादप ऊतक संवर्धन में ऑक्सिन और साइटोकिनिन सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले पौधे विकास नियामक हैं और उनकी मात्रा स्थापित या पुनर्जीवित होने वाले संवर्धन के प्रकार का निर्धारण कर रही है। ऑक्सिन की उच्च सांद्रता आमतौर पर जड़ निर्माण को बढ़ावा देती है, जबकि साइटोकिनिन की उच्च सांद्रता शूट पुनर्जनन को बढ़ावा देती है और ऑक्सिन और साइटोकिनिन दोनों का संतुलन कॉलस के रूप में ज्ञात अविभाजित कोशिकाओं का विकास करता है।

पादप ऊतक संवर्धन की क्षमता

पादप ऊतक संवर्धन प्रौद्योगिकी का बड़े पैमाने पर पौधों के गुणन के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है। हाल के वर्षों में पादप ऊतक संवर्धन तकनीकें पादप प्रसार, रोग उन्मूलन, पादप सुधार और द्वितीय कचयापचयों के उत्पादन के क्षेत्र में प्रमुख औद्योगिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। ऊतक के छोटे टुकड़ों (एक्सप्लांट्स) का उपयोग निरंतर प्रक्रिया में सैकड़ों और हजारों पौधों का उत्पादन करने के लिए किया जा सकता है और नियंत्रित परिस्थितियों में अपेक्षाकृत समयावधि और स्थान में कई हजार पौधों में गुणा किया जा सकता है, चाहे साल भर में मौसम और समय कुछ भी हो।

पौधों के ऊतक संवर्धन के गुणन के उच्च गुणांक के

कारण लुप्तप्राय, संकट ग्रस्त और दुर्लभ प्रजातियों को पौधों के सूक्ष्म प्रसार द्वारा सफलता पूर्वक विकसित और संरक्षित किया जा सकता है। इसके अलावा, सोमाक्लोनल और गैमेटोक्लोनलवेरिएंट के उत्पादन द्वारा फसल सुधार के लिए प्लांट टिशूकल्चर को सबसे कुशल तकनीक माना जाता है। माइक्रोप्रोपेगेशन तकनीक में बेहतर गुणवत्ता वाले पौधों का उत्पादन करने, बेहतर रोग प्रतिरोधक क्षमता और तनाव सहने की क्षमता के साथ अच्छी तरह से अनुकूलित उच्च उपज वाले जीनोटाइप में उपयोगी किस्मों को अलग करने की एक विशाल क्षमता है।

बीज, कटिंग, ग्राफ्टिंग और एयर.लेयरिंग आदि के माध्यम से प्रचार के पारंपरिक तरीकों की तुलना में माइक्रो प्रोपेगेशन तकनीकों के माध्यम से पौधों के वाणिज्यिक उत्पादन के कई फायदे हैं। प्लांट टिशूकल्चर पौधों को वायरस मुक्त पैदा कर सकता है। कोरियो डेलिसयान हुसुओया एशियन कोरियोडेलिस, एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है जिसे कंद–व्युत्पन्न कैलस से दैहिक पूर्ण जनन द्वारा रोग मुक्त कंदों का उत्पादन करने के लिए प्रचारित किया गया था। केले केबंची टॉपवायरस (बीबीटीवी) और ब्रोममोज़ेक वायरस (बीएमवी) से रहित केले के पौधों की मेरिस्टे मटिपकल्चर का उत्पादन किया गया। इनविट्रो में रोगाणु मुक्त जर्मप्लाज्म की खेती करके उच्च पैदावार प्राप्त की गई है।

पादप ऊतक संवर्धन के अनुप्रयोग

प्लांटटिशू कल्चर में मेरिस्टेम और प्लांट के शूट कल्चर का उपयोग बड़ी संख्या में समान एक्सप्लांट्स का उत्पादन करने के लिए किया जाता है जिनका उपयोग व्यावसायिक उत्पादन में पॉटिंग, फ्लोरल प्रोडक्शन और लैंडस्केप के लिए किया जाता है। यह उन प्रजातियों के संरक्षण में मदद करता है जो दुर्लभ और लुप्त प्राय हैं।

इसके अलावा पौधों के बजाय समय बचाने के लिए हर्बिसाइड प्रतिरोध सहन–शीलता, तनाव सहिष्णु पौधों के लिए कोशिकाओं को स्क्रीन करने के लिए एक्सप्लांट्स टिशूकल्चर और कोशिकाओं का उपयोग किया जा सकता है। यह तब और भी अधिक उपयोगी होता है जब नए संकर और प्रोटोप्लास्ट संलयन के पुनर्जनन द्वारा संबंधित प्रजातियों के उत्पादन की आवश्यकता होती है।

फसल की खेती की क्षमता को बढ़ाने के लिए और बड़े पैमाने पर आबादी को खिलाने के लिए दुनिया भर में कृषि के लिए बड़े पैमाने पर प्रचार के साथ ट्रांसजेनिक पौधों की खेती की जा सकती है।

टिशू कल्चर आनुवंशिक रूप से सजातीय रोग मुक्त पादप सामग्री का उत्पादन और प्रसार करता है, इस प्रकार यह तकनीक पौधों की रोग जनक जीवों की संवेदन शीलता को समाप्त करती है।

ट्रांसजेनिक पौधे नवोन्मेषी क्षमता वाले उद्योग में फार्मास्यूटिकल और औद्योगिक हित के पुनः संयोजक प्रोटीन के स्रोत हैं।

प्लांट टिशू कल्चर मूल्यवान संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक विकल्प प्रदान करता है जैसे कि माइक्रोप्रोपेगेशन के माध्यम से द्वितीय कमेटाबोलाइट लुप्त प्राय प्रजातियों के गुणन और न्यूनतम उपलब्ध पादप सामग्री से पौधों की जैवविविधता के संरक्षण में मदद करता है।

भविष्य के पहलू

पिछले कुछ दशकों में विकास और उच्च पैमाने पर उत्पादन की तत्काल आवश्यकता के कारण ऊतक संवर्धन तकनीकों का उपयोग पौधों की वृद्धि, जैविक गतिविधियों, परिवर्तन और द्वितीय कचयापचयों के उत्पादन में सुधार के लिए किया गया था। पूरे पौधों में कम सांद्रता वाले द्वितीय कमेटाबोलाइट्स की समस्याओं से निपटने के लिए तकनीकों में एक महत्वपूर्ण प्रगति की मांग की गई है, बाँझ पौधे प्रदूषण की समस्या को दूर करेंगे और नसबंदी प्रक्रिया के लिए समय कम करेंगे। चयनात्मक मेटाबोलाइट उत्पादन के लिए इनविट्रो प्रचार माध्यमिक मेटाबोलाइट्स और औषधीय रूप से महत्वपूर्ण यौगिकों के लिए अत्यधिक उपयोगी हो सकता है जो कि वर्तमान समय की तत्कालिक आवश्यकता है।

डॉ. पूजा शर्मा
वैज्ञानिक–बी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-05 जनवरी–जून, 2021

काला शीशम (*डलबर्जिया लैटिफोलिया*) के उच्च गुणवत्ता युक्त पौधे तैयार करने की कायिक प्रजनन विधि

डॉ. प्रमोद कुमार, वैज्ञानिक–सी, पवन कुमार पटेल, कनिष्ठ परियोजना अध्येता,
मुकेश कुमार सोनकर, तकनीकी अधिकारी,
आनुवांशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

परिचयः काला शीशम (*डलबर्जिया लैटिफोलिया*) फैबेसीकुल का एक उत्कृष्ट गुणवत्ता एवं व्यावसायिक रूप से अधिक कीमत प्रदान करने वाला काष्ठ वृक्ष है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे "इंडियन रोजवुड" के नाम से भी जाना जाता है। इसके वृक्ष लगभग 1500 मीटर की ऊँचाई तक पाए जाते हैं। भारतवर्ष में कर्नाटक, केरल एवं तमिलनाडु के पश्चिमी घाटों में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। प्रायः यह सागौन, टर्मिनेलिया की कुछ प्रजातियों एवं बाँस के साथ एक सम्बद्ध प्रजाति के रूप में देखा गया है। इसकी काष्ठ का प्रयोग मुख्यतः फर्नीचर, पैनेलिंग एवं सजावटी उत्पादों में किया जाता है। इसकी काष्ठ का घनत्व अधिक होने के कारण शिल्प कार्य सुगमता से नहीं हो पाता है। मध्य भारत के राज्यों मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं महाराष्ट्र के वनों में इसके वृक्षों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है एवं रोपणी अवस्था में कालर रॉट रोग से बीजांकुर उद्भव अवस्था में क्षति होने व रोपण उपरांत धीमी वृद्धि के कारण विभिन्न वृक्षारोपण कार्यक्रमों में इसका सीमित रोपण देखा गया है। निरंतर कम हो रही इसकी संख्या के कारण आई.यू.सी.एन. की रेड लिस्ट के अंतर्गत इसे अति संवेदनशील (vulnerable) की श्रेणी में रखा गया है एवं सीआईटीईएस (CITES) द्वारा भी इसे सूचीबद्ध किया गया है ।

हार्ड वुड वृक्षों की शाखाओं की कटिंग्स द्वारा पौधे तैयार करना एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अन्तर्जात वृद्धिकारकों का स्तर एवं विभिन्न ऊतकों तक उनका परिवहन, वार्षिक वृद्धि चक्र के अंतर्गत पौधे की अवस्था एवं वृद्धि अवरोधक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। *डलबर्जिया* लैटिफोलिया को "जड़ हेतु कठिन" प्रजाति के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। इसकी शाखाओं की कटिंग्स द्वारा आकस्मिक वाह्य जड़ों (Adventitious root) के निर्माण की सफलता दर बहुत कम होने से इस विधि का प्रयोग कर पौधे तैयार करना सामान्य रूप से प्रचलन में नहीं है। अतः वाह्य लक्षणों (फेनोटीपिक) के आधार पर वृक्षों का चयन कर उनकी बीजांकुर संतति की शाखाओं के कायिक प्रजनन द्वारा पौधों को विकसित कर उनके उच्च आनुवंशिक लक्षणों को संरक्षित करने के उद्देश्य से भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून द्वारा वित्तपोषित परियोजना के अंतर्गत विगत वर्षों में इसकी शाखा कटिंग्स की जड़ उत्पादन की क्षमता बढ़ाने के लिए अनुसंधान कार्य किया गया। निरंतर प्रयासों से सामान्य संसाधनों के अधीन ही तकनीक को विकसित कर शाखाओं की कटिंग्स द्वारा जड़ विकसित कर पौधे तैयार किये गए। तकनीक के विभिन्न चरण निम्नानुसार हैं–

कायिक प्रजनन तकनीकः

वृक्षों का चयन एवं बीजांकुर संतति की स्थापना : अलग–अलग उम्र और GBH का प्रतिनिधित्व करने वाले *डलबर्जिया लैटिफोलिया* के फेनोटाइपिक रूप से बेहतर वृक्षों का चयन कर चयनित वृक्षों से बीज एकत्र किए गए और बीजांकुर संतति को तैयार कर संस्थान परिसर में स्थापित किया गया। प्रत्येक वर्ष अप्रैल के द्वितीय पक्ष में टहनियों की कटाई के माध्यम से जुवेनाइल शूट कटिंग्स को कायिक प्रजनन के लिए उपयोग किया गया। प्रयोग के लिए जुवेनाइल शूट कटिंग्स यानी एक साल की एक्सटेंशन ग्रोथ का उपयोग किया गया।

उपयुक्त रूटिंग हार्मोन का चयन : *डलबर्जिया लैटिफोलिया* की शूट कटिंग्स से जड़ उत्पन्न करने के लिए कोई मानकीकृत हार्मोनल उपचार नहीं है। इसलिए, विभिन्न रूटिंग हार्मोन IAA, IBA और NAA की अलग–अलग सांद्रता का प्रयोग कर शूट कटिंग्स को उपचारित किया गया और पाया गया कि IAA ने IBA और NAA की तुलना में अधिक रूटिंग और कैलस को बढ़ावा दिया ।

चयनित संततियों की जड़ उत्पन्न करने की क्षमता : चयनित *डलबर्जिया लैटिफोलिया* के संततिपौधों से प्रत्येक वर्ष अप्रैल के द्वितीय सप्ताह में शाखाओं की कटाई (Hedging) के माध्यम से जुवेनाइल शूट कटिंग्स को एकत्र किया गया और 1: बाविस्टिन के घोल में 5 मिनट तक रखने के बाद उन्हें जड़ों को विकसित करने वाले वृद्धि हार्मोन (IAA) का बेसल डिप ट्रीटमेंट दिया गया। प्रारंभिक वर्षों की जुवेनाइल शूट कटिंग्स को केवल 2.0 मिलिमोलर IAA के घोल से 4 घंटे एवं छः वर्ष से अधिक पौधों की जुवेनाइल शूट कटिंग्स को 5.0 मिलिमोलर IAA 1.0 मिलिमोलर बोरिक एसिड घोल से 16 घंटे तक बेसल डिप विधि से उपचारित किया गया एवं उपचारित शूट कटिंग्स को 1: 2: 1 के अनुपात में मिट्टी, रेत, गोबर खाद के मिश्रण से भरे गए पॉली

बैग्स में लगाया गया। प्रयोग को तीन रेप्लिकेशंश में लगाया गया एवं प्रत्येक में 30 शूट कटिंग के साथ कंट्रोल को भी रखा गया। वाह्य तापमान एवं वायुमंडलीय आर्द्रता को संतुलित रखने के उद्देश्य से प्रयोग को शेडनेट से निर्मित छाया गृह में रखा गया एवं उसके आसपास निरंतर नमी बनाए रखी गयी। प्रयोगों को दो महीने तक निगरानी में रखने बाद शूट कटिंग्स का नमूना लिया गया और उनकी जड़ उत्पन्न करने की क्षमता को दर्ज किया गया।

चित्रः 1–शूट कटिंग्स तैयार करना

चित्रः2–कटिंग्स का उपचार

परिणाम एवं व्याख्या

विभिन्न वर्षों में संततियों की अलग–अलग रूटिंग क्षमता दर्ज की गयी। शरुआती दो–तीन वर्षों में संततियों से प्राप्त शूट कटिंग्स में औसतन 35% जड़ क्षमता देखी गयी, जो क्रमिक वर्षों में कुछ कम हो गयी एवं 8–10 वर्ष पुरानी संततियों से प्राप्त शूट कटिंग्स में औसतन 27% जड़ उत्पन्न करने की क्षमता प्राप्त हुई। प्राप्त परिणामों का सांख्यकीय विश्लेषण रूटिंग क्षमता के प्राप्त आंकड़ों में महत्वपूर्ण भिन्नता को नहीं दर्शा रहा है।

डलबर्जिया लैटिफोलिया के बीजांकुरों एवं शूट कटिंग्स से तैयार किये गए पौधों को प्रायोगिक उद्देश्य से संस्थान परिसर के अन्दर रोपित किया गया और उनकी वृद्धि का आँकलन भी किया गया। दो वर्षों के पश्चात शूट कटिंग्स से तैयार कर रोपित किये गए पौधों की ऊँचाई, कॉलर गोलाई एवं उनके क्राउन का व्यास बीजांकुर रोपित पौधों की तुलना में अधिक पाया गया। अतः शूट कटिंग्स द्वारा तैयार किये गए पौधों के रोपण से कम अवधि में ही अधिक उत्पादन की संभावना पायी गयी ।

शूट कटिंग्स द्वारा वाह्य जड़ों का निर्माण एक सरलीकृत स्रोत–सिंक संकल्पना का प्रतिनिधित्व करता है। प्रमुख सिंक जड़ वृद्धि है जबकि प्राथमिक स्रोत संग्रहीत कार्बोहाइड्रेट है। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि कार्बोहाइड्रेट भंडारण और संग्रहीत कार्बन को जड़ों तक ले जाने की क्षमता एक पौधे के रूप में उसे स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। सुप्त कलियों का प्रभाव उनकी शारीरिक अवस्था (एंडो– या इकोडॉर्मेंट) और उनके सापेक्ष स्रोत या सिंक की क्षमता आकस्मिक वाह्य जड़ों के निर्माण को प्रभावित करता है। सुप्त कलियाँ सुप्तावस्था के उपरान्त अत्यधिक सक्रिय रूप से उद्भव करती हैं अतः पौधों की इस अवस्था के दौरान एकत्र किए गए शूट कटिंग्स में जड़ निर्माण की अधिकतम क्षमता होती है। इस अवधि के दौरान पौधों के मेरिस्टेमेटिक ऊतक कोशिका विभाजन के लिए इष्टतम क्षमता प्रदर्शित करते हैं।

परिणाम दर्शाते हैं कि विभिन्न संततियों की जड़ उत्पन्न करने की क्षमता भिन्न है एवं वाहय कारकों जैसे तापमान, आर्द्रता एवं मृदा मिश्रण शूट कटिंग्स के द्वारा जड़ निर्माण की क्षमता को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्जात विभिन्न कारक एवं वृद्धि हार्मोन का बहिर्जात उपचार वाह्य आकस्मिक जड़ों के निर्माण में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। बहिर्जात IAA उपचार अन्तर्जात IAA के स्थानीय पुनर्वितरण और उसकी आपूर्ति को पेरीसाइकिल क्षेत्र में लक्ष्य कोशिकाओं तक पहुंचाने में मदद

चित्रः3–कटिंग्स द्वारा जड़ निर्माण

करता है। वाह्य आकस्मिक जड़ों का निर्माण आनुवांशिक लक्षण से सम्बद्ध है और पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है, जो वैकल्पिक प्रजनन की रणनीतियों को उसके भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित करता है ।

चित्र:4–पॉली बैग्स में कटिंग्स द्वारा तैयार पौधे

निष्कर्ष : शूट कटिंग्स द्वारा *डलबर्जिया लैटिफोलिया* के गुणवत्तापूर्ण रोपण स्टॉक को तैयार करने की यह तकनीक निम्न कारणों से महत्वपूर्ण है –

- यह एक यूजर फ्रेंडली तकनीक है। सामान्य रोपणी में उपलब्ध संसाधनों के उपयोग से ही पौधों को तैयार किया जा सकता है।
- तापमान एवं आर्द्रता का प्राकृतिक रूप से संतुलन कर तैयार पौधों के हार्डेनिंग के लिए अतरिक्त समय की आवश्यकता नहीं होती है और तैयार पौधों को उसी वर्ष वर्षा ऋतु के समय रोपण कर सकते है।
- मृदा मिश्रण का प्रयोग कर पॉलीबैग्स में ही शूट कटिंग्स द्वारा जड़ उत्पन्न कर पौधे तैयार करने से हार्डेनिंग के लिए शिफ्टिंग के दौरान होने वाली क्षति (मोर्टेलिटी) की संभावना नहीं होती है।

इसलिए *डलबर्जिया लैटिफोलिया* के गुणवत्तापूर्ण रोपण स्टॉक के लिए चयनित वृक्षों की संतति से जुवेनाइल शूट कटिंग्स का प्रजनन एक सरल विधि है। यद्यपि सफलता दर बहुत अधिक नहीं है किन्तु "जड़ हेतु कठिन" प्रजाति के अंतर्गत *डलबर्जिया लैटिफोलिया* के वर्गीकरण के कारण प्राप्त सफलता महत्वपूर्ण है एवं तकनीक का उपयोग कर उच्च गुणवत्ता के पौधे तैयार किए जा सकते हैं ।

डॉ. प्रमोद कुमार
वैज्ञानिक–सी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-05
जनवरी–जून, 2021

फोग (*कैलीगोनम पॉलीगोनोइड्स लिन*) : राजस्थान का एक बहुउपयोगी मरुस्थलीय पादप

एस. आर. बालोच, वैज्ञानिक–डी, नरेन्द्र कुमार कडेला, कनिष्ठ परियोजना शोधार्थी, कुल्लोली रविकिरण निंगप्पा, अनुसंधान सहयोगी
वन पारिस्थितिकी और जलवायु परिवर्तन प्रभाग
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सामान्य नाम – फोग या फोगडा

हिंदी नाम – फोग

वर्गीकरण–

1. जगत – प्लांटी
2. प्रभाग – एंजियोस्पर्म
3. उप प्रभाग – *डिकोटीलेडोन*
4. वर्ग – *मैगनोलियोप्सिडा*
5. गण – *कैरियोफिललेस*
6. कुल – *पॉलीगोनेसी*
7. वंश – *कॉलिगोनम*
8. जाति – *पॉलीगोनोइड्स*

सामान्य परिचय :

कैलीगोनम पॉलीगानोइड्स एक मरुद्भिद झाड़ी है, इसको राजस्थान मे श्फोगश या श्फोगडा के नाम से जाना जाता है, और यह "पॉलीगोनेसी" परिवार के अंतर्गत आता है। यह पूर्वी सऊदी अरब से थार रेगिस्तान तक व्यापक रूप से पाया जाता है। भारत में, फोग केवल राजस्थान के मुख्य जिले जैसलमेर बारमेर एवं बीकानेर क्षेत्र में ही पाया जाता है। राजस्थान का पश्चिमी क्षेत्र रेत के टीलों और रेतीले मैदानों से समृद्ध होने की वजह से यह झाड़ी बहुतया पाई जाती है। यह प्रजाति अत्यधिक सहनीय प्रजाति हैं जो 50 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक तापमान और शुष्क वातावरण को भी सहन कर जीवित रहती है और यह रेगिस्तान को हरा भरा रखने के साथ–साथ मरुस्थलीकरण को नियंत्रित करने में भी मदद करती है। फोग एक पायोनिर प्रजाति है जो किसी भी प्रकार की वनस्पति की अनुपस्थिति में अच्छी तरह से जड़ो को फेलाती है और रेगिस्तान के रेतीले क्षेत्रों का प्रमुख बायोमास उत्पादक है। फोग का आर्थिक महत्व के साथ–साथ पारिस्थितिक महत्व भी है, जैसे कि इसका उपयोग चारें और ईंधन के रूप में किया जाता है। इसके साथ ही साथ हवा द्वारा मिट्टी के कटाव को रोकना, रेत के टीले को स्थिर रखना, मिट्टी की जैविक गतिविधि में सुधार करना, तापमान संतुलन बनाये रखना आदि इसका महत्व है। फोग, मिट्टी के अन्दर अच्छी तरह से एक मजबूत जाल बना लेती है जिसकी वजह से यह रेत के टीलों को आसानी से स्थानांतरित नहीं होने देती है। फोग के फूल की कलियों का उपयोग सब्जी (रायता) के रूप में स्थानीय लोग भोजन में उपयोग करते हैं। राजस्थान मे कैलीगोनम की तीन प्रजातिया पायी जाती है जैसे की *कैलीगोनम कोमोसुम* (*Calligonum comosum*), *कैलीगोनम क्रिनिटम* (*Calligonum crinitum*), *कoलिगोनम पॉलीगोनोइड्स* (*Calligonum polygonoides*) पुरोहित, सी. एस.– कुमार आर. (2020). फोग का रोपण से जैविक कार्बन के बढ़ने के साथ साथ मिट्टी की उर्वरता में भी सुधार करता है। फोग प्रजाति की संख्या कम होने के बहुत से कारण है, जैसे की फोग के कम धुआं और अच्छी जलने की प्रकृति के कारण इसका उपयोग ईंधन के रूप स्थानीय लोग अत्यधिक मात्रा में करते है, इसके अलावा रेत खनन, चराई और इसकी जड़ो का उपयोग चारकोल बनाने मे अत्यधिक मात्रा किये जाने के कारण इसकी संख्या घटती जा रही है ।

फोग का वितरण :

यह पूर्वी सऊदी अरब से थार के रेगिस्तान तक व्यापक रूप से विस्तारित है। भारत में यह केवल पश्चिमी क्षेत्र में ही पाया जाता है। यह झाड़ी जैसलमेर और बीकानेर जिलों में बहुत अधिक पायी जाती है, इसके अतिरिक्त राजस्थान में यह बाड़मेर, चूरू, झुंझुनू, नागौर, सीकर और श्रीगंगानगर आदि जगह पर भी पाई जाती है।

वानस्पतिक विवरण :

कॉलिगोनम पॉलीगानोइड्स एक बिना कांटे की झाड़ी है, रेतीली मिट्टी का क्षेत्र इसका प्राकृतिक आवास है। फोग पत्ती रहित होने के कारण यह थार के रेगिस्तान की कठोर परिस्थितियों के लिए पूरी तरह से अनुकूलित है। इसकी ऊँचाई 2–3 मीटर तक होती है। तने पर नोड, इन्टरनोड पाये जाते है जो कि तने और शाखाओं को विशिष्ट रूप से जोड़ने का काम करती है। जड़ें गहरी, शाखित तथा मूसला प्रकार की पाई जाती है, पुष्पक्रम स्पाइक प्रकार का, फूल सफेद, छोटे, उभयलिंगी और नियमित होते हैं। फल आयताकार और अखरोट जैसे होते हैं और बीज छोटे और गोल होते है।

रासायनिक रचना :

फोग में फ्लैवोनोइड्स (फूल, कलियाँ, बीज और तना),

अल्कलॉइड्स (जड़, फूल, कलियाँ और बीज), प्रोटीन (फूल और बीज), टैनिन, स्टेरॉयड, फिनोल, कार्बोहाइड्रेट और टेरपिनोइड्स (जड़, तना) आदि का समृद्ध स्रोत है। फोग के अपरिपक्व फलों में प्रोटीन (18), कार्बोहाइड्रेट (71.1), चीनी (46), वसा (64%), फाइबर (9.1) विटामिन बी–2 (0.7 मिलीग्राम/100 ग्राम) जैसे पोषक मूल्य होते हैं, इसमें कैल्शियम (670mg/100g), फॉस्फोरस (420mg/100g) और आयरन (12.7 mg/100g) पाये जाते है।

परिस्थितिकी :

यह प्रजाति अत्यधिक सहनीय प्रजाति हैं जो 50 ^{0} से. से अधिक तापमान और शुष्क स्थिति को भी सहन कर सकती है और यह रेगिस्तान को हरा भरा रखने के साथ–साथ मरुस्थलीकरण को नियंत्रित करने में भी मदद करती है। इसके साथ ही साथ हवा द्वारा मिट्टी के कटाव को रोकना, रेत के टीले को स्थिर रखना, मिट्टी की जैविक गतिविधि में सुधार करना, तापमान संतुलन बनाये रखना आदि में इसका महत्व है।

फोग का आर्थिक महत्वः

उपयोग	पादप के भाग	टिप्पणिया
भोजन	फूल कलियां	फूल की कलियों को स्थानीय लोग पारंपरिक व्यंजन रायता बनाने मे किया जाता है, जिसे हल्का उबालने या तलने के बाद गर्मियों के दौरान दही के साथ मिलाकर खाया जाता है।
चारा	हरी टहनिया, फल	हरे और मांसल शाखाओं को ऊंट चाव से खाते हैं और विशेषकर कम अवधि के दौरान इसका उपयोग भेड़, बकरी और मवेशियों के द्वारा चारे के रूप में भी किया जाता है। फल का उपयोग, दुधारू पशुओं और ऊंट के लिए पौष्टिक आहार बनाने में भी किया जाता है।
ईंधन	शाखाओं, जड़	कम धुआं और अच्छी जलने की प्रकृति के कारण इसका उपयोग ग्रामीणों द्वारा ईंधन के रूप में किया जाता है।
दवा	पत्तियाँ	रेगिस्तान के निवासी कैलोट्रोपिस प्रोसेरा (आक) के लेटेक्स के साथ फोग की पत्तियों को मिलाकर आँखों की बीमारी में उपयोग करते है।
हैज एवं शेड	.पूर्ण पौधा	खेतों की सीमाओं के सीमांकन, घर की सुरक्षा आदि में इसका उपयोग हैज के रूप में किया जाता है। टहनियाँ और शाखायें स्थानीय निवासियों द्वारा झोपड़ियों और जानवरों के लिए छाया (शेड) बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।
धार्मिक	पुष्प	गणगोर त्योहार में पूजा के दौरान उपयोग में लिया जाता है।

चित्र : 01

चित्र : 02

चित्र : 03

चित्र : 1,2,3 – कैलीगोनम पॉलीगानोइड्स (फोग) का प्राकृतिक आवास और इसकी आकारिकी

सन्दर्भ :

- सिंह,जी. सिंह,बी. (2017) कैलीगोनम पॉलीगानोइड्स लिन का बायोमास समीकरण और कार्बन स्टॉक का मूल्यांकन, भारतीय शुष्क क्षेत्र की एक झाड़ी, करंट साइंस, 2456–2462
- पुरोहित, सी.एस.,– कुमार. आर. (2020), भारत से जीनस कैलीगोनम एल (पॉलीगोनेसी) पर एक समीक्षा और भारत के फ्लोरा के लिए एक अतिरिक्त कॉलिगोनम क्रिनिटम की रिपोर्ट, एशिया–प्रशांत जैव विविधता जर्नल, 13 (2), 319–324।
- कुमार, ए. (2020), बीकानेर संभाग, राजस्थान में इंदिरा गांधी नहर परियोजना का पादप विविधता पर के प्रभाव पर अध्ययन (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय)।

एस. आर. बालोच
वैज्ञानिक–डी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका
अंक-05
जनवरी–जून, 2021

शहतूत फल के उपयोग एवं इसके औषधीय गुण

सहदेव चौहान, वैज्ञानिक–सी,[1] पवन शुक्ला, वैज्ञानिक–सी,[1] बी.के. गोयल, वैज्ञानिक–डी[1] एवं वी.पी. पांडे', मुख्य तकनीकी अधिकारी[2]

[1]पी–2, मूल बीज फार्म, रा.रे.बी.सं, कें.रे.बो., शीशमबाड़ा, देहरादून

[2]'वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

शहतूत दुनिया भर में उगाया जाता है। शहतूत का पत्ता आमतौर पर रेशम प्राप्त करने के लिए रेशम के कीड़ों को आहार के रूप में दिया जाता है जो बदले में रेशम फाइबर का उत्पादन करते है। रेशम उत्पादन में भारत का स्थान चीन के बाद दूसरे नंबर पर है। यद्यपि शहतूत की खेती विभिन्न जलवायु में की जाती है, लेकिन भारत का उष्णकटिबंधीय क्षेत्र प्रमुख रेशम उत्पादन जोन है जिसमें कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु राज्य इत्यादि आते है। भारत में रेशम उत्पादन उद्योग को अधिकांश राज्यों ने उच्च आर्थिक प्रतिलाभ के कारण एक महत्वपूर्ण कृषि उद्योग के रूप में अपनाया है।

पत्तियों का रेशम उत्पादन उद्योग में उपयोग करने के अलावा, इस जीनस के फलों में मानव के लिए बहुत उच्च आर्थिक मूल्य के विभिन्न मूल्यवान औद्योगिक उत्पाद प्रदान करने की भी जबरदस्त क्षमता है। शहतूत का फल मीठा होता है (चित्र–1)। यह फल मानव के लिए उपयोगी महत्वपूर्ण पोषक तत्वों से युक्त है (तालिका 1)। यदि इन फलों का औद्योगिक रूप से विभिन्न व्यावसायिक उत्पादों के लिए औद्योगिक उपयोग किया जाता है, तो शहतूत दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण फसल बन सकता है। इस तरह से शहतूत का उपयोग रेशम उत्पादन उद्योग के अलावा अन्य उद्योगों में भी किया जा सकता है।

चित्र–1 शहतूत का फल

चित्र–2 शहतूत का फल

यह लेख वैश्विक परिदृश्य के लिए शहतूत के फल के विभिन्न उपयोग एवं इससे होने वाले स्वास्थ्य लाभ पर केन्द्रित है। शहतूत के ताजे फलों का उपयोग प्राचीन समय से मधुमेह की पारंपरिक चिकित्सा में और समय से पहले सफेद बालों के इलाज के लिए किया जाता रहा है। शहतूत के फल में कई संभावित औषधीय गुण होते हैं जिनमें कोलेस्ट्रॉल, एंटी–डायबिटिक, एंटीऑक्सीडेटिव और मोटापा विरोधी प्रभाव शामिल हैं। ये औषधीय गुण एंथोसायनिन सहित पॉलीफिनोल यौगिकों की उपस्थिति के कारण हैं। हालांकि, एक ही प्रजाति के शहतूत के फलों के अलग–अलग रंगों में एंथोसायनिन की अलग–अलग मात्रा हो सकती है। शहतूत का इस्तेमाल जैम, जैली, पल्प, फ्रूट ड्रिंक, फ्रूट सॉस, केक, फ्रूटि, फ्रूट पाउडर, फ्रूट वाइन, फूड कलरेंट, डायबिटीज कंट्रोल एजेंट और जुगाली करने वाले पशुओं के भोजन के रूप में किया जा सकता है। इसका उपयोग दवा के रूप में भी किया जा सकता है। यह दुनियां भर में शहतूत के फलों के औद्योगिक दोहन के लिए एक नया आयाम प्रदान करता है। जोकि निम्न प्रकार है –

तालिका 1. ताजे शहतूत के फल में उपस्थित पोषक तत्व

प्रकार	मात्रा (प्रति 100 ग्रा.)	प्रकार	मात्रा (प्रति 100 ग्रा.)
प्रोक्सिमेट		विटामिन	
पानी	87.68 ग्रा.	विटामिन सी, कुल एस्कॉर्बिक एसिड	36.4 मिलीग्रा.
ऊर्जा	43 कि. कैलोरी	थायमिन	0.029 मिलीग्रा.
प्रोटिन	1.44 ग्रा.	रादबोफ्लेविन	0.101 मिलीग्रा.
वसा	0.39 ग्रा.	नियासिन	0.62 मिलीग्रा.
कार्बोहाइड्रेट	9.8 ग्रा.	विटामिन बी –6	0.05 मिलीग्रा.
फाइबर, कुल आहारीक	1.7 ग्रा.	फोलेट, DFE	6 माइक्रोग्रा.
शर्करा	8.1 ग्रा.	विटामिन ए, RAE	1 माइक्रोग्रा.
खनिज	39 मिलीग्रा.	विटामिन ए, IU	25 IU
कैल्सियम, Ca	1.85 मिलीग्रा.	विटामिन इ, (अल्फा टोकोफेरोल)	0.87 मिलीग्रा.
आयरन, Fe	18 मिलीग्रा.	विटामिन के (फिल्लोकुइनोने)	7.8 माइक्रोग्रा.
मैग्रीशियम, Mg	194 मिलीग्रा.	वसा	
पोटैशिम, K	10 मिलीग्रा.	फॉस्फोरसए P	38 मिलीग्रा.
सोडियम, Na	0.12 मिलीग्रा.	फैटा एसिड, कुल संतृप्त वसीय अम्ल (SFA)	0.027 ग्रा.
जिंक, Zn		वसीय अम्ल, कुल मोनोअसंतृप्त (MUFA)	0.041 ग्रा.
		वसीय अम्ल, कुल बहु असंतृप्त ;च्थ्.द्ध	0.207 ग्रा.

(स्रोत : यूएसडीए राष्ट्रीय पोषक तत्व डेटाबेस, 2011 से प्रकाशित)

शहतूत फल का पेय (फ्रूट ड्रिंक) के रूप में उपयोग:

यूनाइटेड किंगडम की एक नई यूके फ्रूट जूस कंपनी "फेयरजाइस" ने शुद्ध ताजे शहतूत के फलों से जूस तैयार कर एक सुपर फ्रूटड्रिंक लॉन्च किया है जो एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर है। यह भी एक विशेष प्रकार के एल्क्लाइड, रेजर्वेट्रोल का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो हृदय रोग से बचाव के लिए फायदेमंद माना जाता है। यह भूख को भी कम करता है जिसके कारण इस पेय को मोटापा कम करने में एक उपयोगी पेय के रूप में सूचीबद्ध किया गया है (फेयरजुइस, 2008)।

बागवानी उत्पादों में उपयोग :

हाल के वर्षों में, विभिन्न परिस्थितियों में शहतूत के पौधों की खेती पर काफी काम करने के साथ, शहतूत के फलों के रस का व्यावसायिक रूप से स्वास्थ्य पेय के रूप में उत्पादन किया गया है और यह चीन, जापान और कोरिया में बहुत लोकप्रिय हो गया है। बिना किसी प्रीजरवेटिव के शहतूत के फल का रस तीन महीने तक कोल्ड स्टोरेज में ताजा बना रहता है, जबकि बोतलबंद पेय लगभग 12 महीनों तक कमरे के तापमान पर ताजा रहते है (धर्मानंद, 2008)।

फलों की चटनी (फ्रूटसॉस) और केक के रूप उपयोग : फारसी शहतूत से कई तरह की मिठाइयाँ, सॉस, पाई–मेकिंग, केक और जैली इत्यादि बनाई जाती हैं ।

फ्रूट टी के रूप में उपयोग :

चीनी बाजारों में, शहतूत को प्रायः सांगशेंगाओ नामक पेस्ट के रूप में प्रदान किया जाता है। इस पेस्ट को गर्म पानी में मिलाकर चाय बनाया जाता है। यह चाय लिवर और किडनी को बेहतर बनाने में बहुत उपयोगी मानी जाती है। साथ ही, यह पारंपरिक फॉर्मूला यिकी कांग्मिंग टैंग (YiqiCongming Tang) के साथ संयुक्त किया जाता है, जिसका उपयोग श्रवणदोष और दृष्टिदोष को दूर करने के लिए किया जाता है (itmonline-com, 2009)।

शहतूत फल पाउडर (फ्रूट पाउडर) के रूप में उपयोग :

शहतूत के फल को सुखाकर पाउडर के रूप में संग्रहित किया जा सकता है। इस 10 ग्राम सूखे पाउडर में लगभग मिलीग्राम 100 एंथोसायनिन मौजूद होता है। इसमें रेजर्वेट्रोल मौजूद होने की वजह से यह पाउडर स्वस्थ

सामान्य कोशिकाओं को कैंसर कोशिकाओं में उत्परिवर्तित होने से रोक सकता है (हुआ, 2003)। यह हृदय रोग, कैंसर और पुरानी सूजन से जुड़े अन्य रोगों की रोकथाम में भी उपयोगी है। यह पाउडर फ्री रेडिकाल्स से कोशिकाओं पर होने वाले कुप्रभाव से बचाने में भी सहायक है जिससे कोशिकायें लम्बे समय तक युवा बनी रहती है। यह पाउडर स्वस्थ कोलेस्ट्रॉल को बढ़ावा देता है और मानव शरीर में कार्बोहाइड्रेट पाचन को नियंत्रित करता है ।

शहतूत फल से शराब (फ्रूट वाइन) के रूप में उपयोग :

दिन में एक गिलास शहतूत की शराब लेने से शरीर में उपस्थित अशुद्धियों और कोप्रोस्टेसिस (आंतों में मल अवशेष) से छुटकारा पाने में मदद मिलती है जो शरीर को पतला बनाने में सहायक है। चावल की शराब या अंगूर की शराब में शहतूत को डुबो कर बनाई गई शराब का प्रयोग बीमारियों के बाद कमजोरी की दवा के रूप में काम करती है। साथ ही यह मर्दाना जीवन शक्ति को बढ़ाने और समग्र जीवन शक्ति को लाभ पहुंचाने के लिए भी उपयोगी है।

फूड कलरेंट के रूप में उपयोग :

शहतूत के फल एंथोसायनिन से भरपूर होते है जिसका उपयोग खाद्य उद्योग में प्राकृतिक रंग के औद्योगिक उत्पादन करने में किया जा सकता है। विशेष रूप से इसमें उपस्थित सायनिन लाल वर्णक में योगदान करता है और शहतूत फल को लाल से बैंगनी रंग प्रदान करता है।

पशु आहार के रूप में उपयोग :

हबीब (2004) ने पाया कि शहतूत के फलों से तैयार बहुपोषक चारे ब्लॉक ने पशुधन में दूध उत्पादन को 30 से बढ़ाकर 50 कर दिया तथा इन पशुओं में बीमारियाँ भी कम पाई गई।

दवा उद्योग में शहतूत फल :

आधुनिक चिकित्सा में शहतूत का एकमात्र उपयोग सिरप तैयार करने में, दवाओं में स्वाद और प्राकृतिक रंग प्रदान करने के लिए (सिंघल व साथी, 2001 व 2003) किया जाता है। शहतूत के फल का उपयोग कई चिकित्सा उद्देश्यों जैसे कि आंतरिक स्राव को संतुलित करने और प्रतिरक्षा बढ़ाने के लिए (किम और बोनचोख, 1991य वेंकटेश कुमार और चौहान, 2008) के लिए किया जाता है। यह असंयमित मूत्र त्याग, टिनिटस, चक्कर आना, कब्ज, गले में खराश, अवसाद और बुखार के इलाज में भी प्रयोग किया जाता है। शहतूत के फलों को एंटीऑक्सीडेंट गुणों (किम व साथी, 1996 व 1998) से भरपूर बताया जाता है। हाँग व उनके समूह (2004) ने पाया कि शहतूत फल की एंटीऑक्सीडेंट गुण रक्षा प्रणाली को मजबूत करता है और मधुमेह प्रेरित चूहों के एरिथ्रोसाइट्स में ऑक्सीडेटिव पदार्थों से होने वाले नुकसान की रोकथाम करने में मदद करता है।

शहतूत से संबंधित साहित्य की समीक्षाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शहतूत के फलों में पॉलीफिनोलिक यौगिकों और एंटीऑक्सिडेंट की उच्च मात्रा होती है। इससे पता चलता है कि खाद्य और स्वास्थ्य सेवा उद्योग में शहतूत के फलों को उपयोग करने की काफी संभावनाएं है एवं दिन प्रतिदिन इसका बाजार भी बढ़ता जा रहा है। हालांकि, शहतूत में उपस्थित एंथोसायनिन, एल्कलॉइड, फ्लेवोनोइड और पॉलीफिनोल्स जैसे जैव सक्रिय यौगिकों की मात्रा शहतूत की उगाई जाने वाली किस्म पर निर्भर करती है। पुरानी बीमारियों की रोकथाम के मामले में स्वास्थ्य पर शहतूत के फलों के लाभकारी प्रभावों का अध्ययन अधिकांशतः पशु आधारित है। अतः यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि शहतूत के फल किस हद तक विभिन्न बीमारियों की रोकथाम में प्रभावी है तथा इसका मानव स्वास्थ्य पर होने वाले प्रभावों पर गहन अध्ययन की जरुरत है।

सहदेव चौहान
वैज्ञानिक–सी

टिड्डी: वन वनस्पति के लिए अंतर्राष्ट्रीय खतरा

तन्मय कुमार भोई, वैज्ञानिक बी,
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

टिड्डी एक बड़ा, मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय टिड्डा है जिसमें उड़ान की मजबूत शक्तियां होती है। वे सामान्य टिड्डों से व्यवहार को बदलने (ग्रेगराइज़) की क्षमता में भिन्न होते हैं और झुंड बनाते हैं जो बड़ी दूरी तक प्रवास कर सकते हैं। ग्रेगरीकरण (Gregariou) का अर्थ है जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण एकान्त (Solitariou) कीटों का झुंड में परिवर्तन। टिड्डियां आमतौर पर जून और जुलाई के महीनों में देखी जाती हैं क्योंकि ये कीट गर्मियों से लेकर बरसात के मौसम तक सक्रिय रहते हैं। टिड्डियों में गुणा करने, समूह बनाने, अपेक्षाकृत बड़ी दूरी तक प्रवास करने की उच्च क्षमता होती है (वे प्रति दिन 150 किमी तक उड़ सकते हैं) और यदि अच्छी बारिश होती है और पारिस्थितिक स्थिति अनुकूल हो जाती है, तो तेजी से प्रजनन करते हैं और तीन महीनों में लगभग 20 गुना बढ़ जाते हैं। खाद्य और कृषि संगठन (FAO) के अनुसार वैश्विक समुदाय को टिड्डी की सामान्य स्थिति के बारे में जानकारी प्रदान करता है और आक्रमण के खतरे वाले देशों को समय पर चेतावनी देता है। खाद्य और कृषि संगठन ने फरवरी, 2019 में पूर्वोत्तर अफ्रीका और सऊदी अरब में टिड्डियों के प्रकोप पर चेतावनी दिया। भारत में टिड्डियों की चार प्रजातियां, रेगिस्तानी टिड्डे (Schistocerca gregaria), प्रवासी टिड्डे (Locusta migratoria), बॉम्बे टिड्डी (*Nomadacris succincta*) और ट्री टिड्डी (*Anacridium sp.*)।

वनस्पति के लिए खतरा: वयस्क टिड्डी हर दिन अपने वजन के समान खाना खा सकते हैं, यानी प्रति दिन लगभग दो ग्राम ताजा वनस्पति। एक बहुत छोटा झुंड एक दिन में लगभग 35,000 लोगों को खाना खा जाता है, जो फसलों, पेड़ और खाद्य सुरक्षा के लिए विनाशकारी खतरा है। यदि संक्रमणों का पता नहीं लगाया जाता है और उन्हें नियंत्रित नहीं किया जाता है, तो विनाशकारी विपत्तियां विकसित हो सकती हैं, जिन्हें नियंत्रण में लाने में अक्सर कई साल और करोड़ों डॉलर लग जाते हैं, जिसके गंभीर परिणाम खाद्य सुरक्षा और आजीविका पर पड़ता हैं।

प्रजनन के मौसम:

कुल मिलाकर, टिड्डियों के लिए तीन प्रजनन काल होते हैं (i) शीतकालीन प्रजनन (नवंबर से दिसंबर), (ii) बसंत प्रजनन (जनवरी से जून) और (iii) ग्रीष्मकालीन प्रजनन (जुलाई से अक्तूबर)। भारत में केवल एक ही प्रजनन का मौसम है और वह है ग्रीष्मकालीन प्रजनन। पड़ोसी देश पाकिस्तान में बसंत और ग्रीष्मकालीन प्रजनन दोनों हैं।

टिड्डियों का जीवन चक्र:

चरण:

अंडा	:	10.65 दिन
अप्सरा (हॉपर)	:	24.95 दिन
वयस्क	:	2.5.5 माह

जलवायु परिवर्तन और टिड्डियों का झुंड:

भारत में वर्तमान टिड्डियों के हमले के पीछे दो मौसम संबंधी चालक हैं, एक, मार्च–अप्रैल में अरब प्रायद्वीप में मुख्य बसंत प्रजनन पथों में बेमौसम भारी बारिश। दो, अरब प्रायद्वीप से भारत की ओर तेज पश्चिमी हवाएं।

मौसम विज्ञानियों के अनुसार हिंद महासागर (हिंद–महासागर द्विध्रुव) में वार्मिंग का एक अलग पैटर्न एक ट्रिगर हो सकता है। पिछले साल भारतीय पड़ोस में सबसे मजबूत सकारात्मक द्विध्रुवों में से एक देखा गया, जिससे पश्चिमी और पूर्वी हिंद महासागर के तापमान में दो डिग्री से अधिक का अंतर आया। जलवायु परिवर्तन के कारण हिंद महासागर के द्विध्रुव में विसंगतियां बढ़ रही हैं और बाद में, मानसून पैटर्न, तीव्रता, चक्रवाती तूफान, परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं। टिड्डियों का हमला इसी बदलाव की अभिव्यक्ति मात्र है। इसके चलते 2019 में पश्चिमी भारत में मानसून समय से छह सप्ताह पहले शुरू हो गया। यह भी सामान्य सितंबर/अक्तुबर चक्र के बजाय नवंबर तक चला। विस्तारित बारिश ने प्रजनन की स्थिति पैदा की और प्राकृतिक वनस्पति भी पैदा की जिस पर टिड्डियां जीवन यापन करती हैं। इसके अलावा, चक्रवाती तूफान मेकुनु और लुबन ने पिछले वर्ष क्रमशः ओमान और यमन में कहर बरपाया। भारी बारिश ने निर्जन रेगिस्तानी इलाकों को बड़ी झील में बदल दिया था जहाँ टिड्डियों के झुंड पनपते थे। टिड्डियों को निष्क्रिय उड़ने वाले के रूप में जाना जाता है और आम तौर पर हवा का अनुसरण करते हैं। उनके आंदोलन को पश्चिमी हवाओं से सहायता मिली है, जो बंगाल की खाड़ी में चक्रवात अम्फान द्वारा बनाए गए निम्न दबाव के क्षेत्र से और मजबूत हुई है।

हिंद महासागर द्विध्रुवीय: हिंद महासागर द्विध्रुवीय नामक एक घटना है, जिसमें समुद्र के पश्चिमी और पूर्वी हिस्से अलग–अलग गर्म होते है, भारत और पश्चिम एशिया में अत्यधिक बारिश लाने में यह बाहरी प्रभाव डालते हैं। एक सकारात्मक द्विध्रुव तब होता है जब पश्चिमी भाग पूर्वी भाग से एक डिग्री या अधिक गर्म होता है। एक नकारात्मक द्विध्रुवीय चरण से विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न होती है। पूर्वी हिंद महासागर में गर्म पानी और अधिक वर्षा और पश्चिम में शीतक और शुष्क स्थिति से इनके लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है।

एकीकृत टिड्डी प्रबंधनः

- इसमें आक्रमण करने वाले झुंडों द्वारा रखे गए अंडे को नष्ट करना, अप्सराओं को फंसाने के लिए खाइयों को खोदना, हॉपरडोजर का उपयोग करना, पहिएदार स्क्रीन जो टिड्डियों को पानी और मिट्टी के तेल से युक्त गर्त में गिरने का कारण बनती हैं। कीटनाशक चारा का उपयोग करना और विमानों से झुंड और प्रजनन के क्षेत्र में हवा से कीटनाशक छिड़कना, मैलाथियान जैसे कि ऑर्गनोफॉस्फेट कीटनाशक टिड्डियों की रोकथाम के लिए प्रभावी हैं।

- वयस्क टिड्डियों को मारने के लिए 100 किग्रा सूखी रेत/महीन मिट्टी में 500 मिली डीडीवीपी 76 ईसी 500 मिली पानी मिलाकर खड़ी फसल में छिड़कें।

- यदि असिंचित खेतों में ओविपोजिशन छिद्र पाए जाते हैं, तो पहले क्विनालफस 1.5 डीपी या क्लोरपाइरीफस 1.5 डीपी को मिट्टी में डालें और फिर अंडे और उभरती हुई अप्सराओं को मारने के लिए खेत की जुताई करें।

- अगर अंडे से लार्वे का निकलना शुरू हो गया हो और अप्सरा दिखाई दे तो बायोपेस्टीसाइड मेटारिज़ियम एनिसोप्लिया 75 ग्राम/15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

- यदि हॉपर बैंड बनता है और चलते हुए देखा जाता है, तो अप्सरा को मारने के लिए मार्चिंग हॉपर बैंड के सामने सूखी घास या अन्य खरपतवार इकट्ठा कर जलाएं।

- मार्चिंग हॉपर बैंड के सामने 2 फीट गहरी और 2 फीट चौड़ी खाई खोदें और फिर खाई में क्विनालफॉस 1.5 डीपी या क्लोरपाइरीफस 1.5 डीपी मिश्रण डालें या पानी उपलब्ध हो तो खाई में पानी डालें।

- **टिड्डी चेतावनी संगठन (LWO):** यह 1939 में स्थापित किया गया था और बाद में 1946 में पादप संरक्षण संगरोध और भंडारण निदेशालय के साथ मिला दिया गया था। टिड्डी चेतावनी संगठन मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात आदि राज्यों में अनुसूचित रेगिस्तानी क्षेत्र (SDA) में टिड्डियों की स्थिति की निगरानी और नियंत्रण के लिए कार्य करता है।

तन्मय कुमार भोई
वैज्ञानिक–बी

जनवरी–जून, 2021 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

गणतंत्र दिवस

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में 72वां गणतंत्र दिवस बड़ें ही हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री अरूण सिंह रावत, महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् एवं निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान जी ने मुख्य भवन के प्रांगण में ध्वजारोहण किया। श्री अरूण सिंह रावत जी ने सभी को 72वें गणतंत्र दिवस की बधाई दी। महानिदेशक महोदय ने सभी उपस्थित लोगों को गणतंत्र का संकल्प दिलवाया। उन्होंने सभी को 72वें गणतंत्र दिवस की बधाई दी तथा उपस्थित जनसमूह से देश की उन्नति व तरक्की में भरपूर योगदान हेतु अपील की। श्री रावत जी ने विश्व में कोरोना जैसी महामारी से बचने के लिए सरकार द्वारा दिए गए दिशा निर्देशों का पालन करने हेतु अपील की। इस मौके पर एफ0आर0आई0 के कर्मचारियों व अधिकारियों को आई0सी0एफ0आर0ई आउटस्टेंडिग एम्प्लॉई अवार्ड–2020 से सम्मानित किया गया। दिनांक 27 अक्तूबर से 02 नवम्बर, 2020 तक सर्तकता जागरूकता सप्ताह मनाया गया, जिसके अर्न्तगत एक निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। गणतंत्र दिवस के इस अवसर पर प्रतियोगिता में भाग लेने वाले कर्मचारियों को प्रथम, द्वितीय तृतीय एवं एक सांत्वना पुरस्कार प्रदान किया गया। इस अवसर पर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी के आई0एफ0एस0 प्रोबेशनर्स, एफ0आर0आई0 यूनिवर्सिटी के छात्र छात्राएं, संस्थान व परिषद् के वन अधिकारी, वैज्ञानिक, कर्मचारी उपस्थित थे। गणतंत्र दिवस के इस पावन अवसर पर संस्थान की मुख्य भवन की इमारत को रात्रि रोशनी से जगमगाया गया।

विश्व वानिकी दिवस–2021

वन अनुसंधान संस्थान देहरादून द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय वन दिवस–2021 मनाया गया। इस अवसर पर संस्थान में दिनांक 20 मार्च, 2021 को ''वन पुनरूद्धारः स्वास्थ्य एवं स्वस्थ रहने के बेहतर तरीके'' विषय पर एक प्रदर्शनी लगाई गई, जिसमें संस्थान के विभिन्न प्रभागों द्वारा पोस्टर आदि के माध्यम से आम जनता को वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी दी गई। प्रदर्शनी का उद्घाटन भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के महानिदेशक एवं वन अनुसंधान संस्थान के निदेशक श्री अरूण सिंह रावत, भा0व0से0 द्वारा किया गया। इस अवसर पर संस्थान के अधिकारी, प्रभाग प्रमुख, वैज्ञानिक एवं कर्मचारीगण मौजूद रहे।

संस्थान ने इस अवसर पर केन्द्रीय विद्यालय तथा नवोदय विद्यालय के छात्रों के लिए निबन्ध तथा पेंटिंग प्रतियोगिता का आयोजन भी किया। इस अवसर पर बर्ड वॉचिंग एवं फ्लोरा बायोडायवर्सिटी को दर्शाने हेतु प्रातः भ्रमण की व्यवस्था की गई। संस्थान के सभी संग्रहालय संस्थान में भ्रमण करने वाले आगंतुकों के लिए निशुल्क खुले रहे।

विश्व पर्यावरण दिवस–2021

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा विश्व पर्यावरण दिवस मनाया गया। इस अवसर पर पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से पारिस्थितिकी संरक्षण पर विश्वविद्यालय, कॉलेज तथा जवाहर नवोदय विद्यालय के छात्रों के लिए लघुकथा, कविता, निबंध तथा प्रस्तुतिकरण पर आयोजित प्रितियोगिताओं के परिणाम घोषित किए गए। साथ ही संस्थान में पर्यावरण सूचना तंत्र के द्वारा स्लोगन, पोस्टर और प्रस्तुतिकरण के प्रतियोगिता के परिणाम भी घोषित किए गए। उक्त प्रतियोगिताओं में निबंध लेखन में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः प्रणव मिश्रा, केन्द्रीय विद्यालय, प्रीतमपुरा दिल्ली, सरिता रावत, जवाहर नवोदय विद्यालय और प्रियंका यादव, केन्द्रीय विद्यालय, नई दिल्ली (संयुक्त रूप से) तथा सहस यादव, केन्द्रीय विद्यालय रोहणी दिल्ली और नेहा मीना, के0वी0 एसपीजी द्वारिका नई को (संयुक्त रूप से) को प्रदान किए गए। रचनात्मक लेखन कार्य के लिए प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः गौरव नेगी, तकनीशियन, एफआरआई, देहरादून, रौनक यादव, पीएचडी स्कॉलर, एफआरआई सम विश्वविद्यालय एवं भारती सिंह, डीबीएस पीजी कॉलेज, देहरादून को दिए गए। पर्यावरण क्वीज में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः केशव नाग, रजत शर्मा और विवेक चौहान को दिया गया। पर्यावरण सूचना तंत्र द्वारा आयोजित स्लोगन प्रतियोगिता के लिए उत्तम सलोगन के लिए प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः वेदांश नेगी, एसजीआरआर पब्लिक स्कूल, दीक्षा उनियाल, जिसस मेरी, और सृष्टि, के0वी0 आईएमए को पुरस्कार मिला। विश्वविद्यालय स्तर की प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः साक्षी यादव, अम्बिका और तबंसुम अंसारी, एफ आर आई सम विश्वविद्यालय को प्राप्त हुए। विद्यालय स्तर की चित्रकला प्रतियोगता के लिए प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः श्रुति पाटिल, एसजेसीएस मैसूर कर्नाटर, अभिषेक राजपुर, लखनऊ पब्लिक स्कूल एवं दिव्या उनियाल, जीसस मेरी को दिए गए। विश्वविद्यालय स्तर में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः गरिमा कुमारी, एफआरआई विश्वविद्यालय, शशांक कुमार बीबीएम, कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनवाद एवं साक्षी यादव, एफआरआई, विश्वविद्यालय को प्रदान किए गए। संबोधन प्रतियोगता में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पुरस्कार क्रमशः जीनब जिस्तु, एल सी स्कूल शिमला, आकांक्षा नेगी, डीएवी, न्यू शिमला और दृष्टि चिलाना, जयशीस पब्लिक स्कूल, (संयुक्त रूप से) रुद्रपुर पब्लिक स्कूल को मिला। इस अवसर पर परिषद के महानिदेशक, श्री अरुण सिंह रावत जी ने सभी विजेताओं को बधाई दी और उन्होंने सभी को पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने की अपील भी की।

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

प्रतिवर्ष की भांति 21 जून, 2021 को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस–2021 वन अनुसंधान संस्थान में मनाया गया। कोविड–19 को ध्यान में रखते हुए वन अनुसंधान के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं उनके परिवार के सदस्यों ने अपने–अपने घरों में ही रहकर योग और प्राणायाम किया।